



अथर्ववेद

म्वाध्याय ।

(अथर्ववेदका सुषोप भाग्य)

— १०८३ —

नवमं काण्डम् ।

लेखक और प्रकाशक

श्रीपाद दामोदर मानवन्तकर

ध्याध्यायमण्डल, अंध (जि० सातारा)

प्रथम बार

१९१८

संवत् १९८८; शके १८९३; सन १९३१

वेदमंत्रमें देवोंका निवाम ।

ऋषां जक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन्देवा अपि विश्वं निषेदुः ।
यस्मिन् वेदं किमुषा करिष्यति य इत्तद्विबुध इमे समासते ॥
ऋग्वेद १ । १३४ । ३६; अथर्ववेद ९ । १० । १८

“परम आकाशमें रहनेवाले सब देव ऋषियों- वेदमंत्रोंके बधुरोंमें बैठे हैं। इस बातको जो नहीं जानता, वह वेदमंत्र लेकर क्या करेगा ? जो इस बातको जानते हैं वे संपटित होकर उच्च स्थानमें बैठते हैं ।”

मुद्रक तथा प्रकाशक—जीपार दामोदर सातवळेकर,

भारतमुद्रणालय, औरंग (जि० सातारा.)



अथर्ववेद का स्वाध्याय ।

अथर्ववेदका सुबोध भाष्य ।

नवम काण्ड ।

इस नवम काण्डका प्रारंभ 'दिवा' शब्दसे हुआ है। इसका अर्थ 'प्रकाशमय' स्वर्गलोक है। प्रकाशमय लोक मंगल है अतः इस काण्डका प्रारंभ मंगल शब्दसे हुआ है। इस सूक्तकी देवता 'मधु' अर्थात् मीटाम है। जिस सूत्रारमासे यह संपूर्ण विश्व बंधा गया है उस मधुर सूत्रका वर्णन इस मंत्रमें होनेसे इस काण्डका प्रारंभ मंगलके वर्णनसे हुआ है, इसमें संदेह नहीं है।

इस काण्डमें ५ अनुवाक, १० सूक्त और ३०२ मंत्र हैं। इनका विभाग इस प्रकार है।

अनुवाक	सूक्त	दृष्टतिविभाग	पर्याय	मंत्रसंख्या	कुलसंख्या
१	१	१०+१४		२४	
	२	१०+१०+५		२५	४९
२	३	१०+१०+११		३१	
	४	१०+१४		२४	५५
३	५	१०+१०+१०+८		३८	
	६	—	६	६२	१००
४	७	—	१	२६	
	८	१०+१२		२२	४८
५	९	१०+१२		२२	
	१०	१०+१०+८		२८	५०
				३०२	३०२

इस काण्डमें १० सूक्त हैं, उनके ऋषि देवता छन्द देखिये—

सूक्तोंके ऋषि-देवता-छन्द ।

सूक्त संक्रम्यमा	ऋषि	देवता	छन्द
प्रथमोऽनुवाकः । विंशः प्रपाठकः ।			
१	२४	अथवां	मधु अश्विनी
			त्रिष्टुप् २ त्रिष्टुप्वाग्नौ पंक्तिः, ३ पराबुद्ध्, ४ महाबृहती अतिहावद्वर्गभा, ५ अग्नि जागन्गभा महाबृहती, ६ बृहतीगभा संस्कार-पंक्ति, ७ पराबृहती प्रस्तारपंक्तिः, १० पुरोष्णिक्पंक्तिः, ११-१३, १४, १६, १८, १९ अनुष्टुभः, १४ पुरोष्णिक्, १० उपरिहाहिराद् बृहती, २० भुरिग्विहावपंक्ति, २१ एकाव- द्विप- आर्षी अनुष्टुप्, २२ द्विप- साह्यी पुरोष्णिक्, २३ द्विप- आर्षी पंक्तिः, २४ एकाव- परप- अहि ।
२	२५	१, काम	१, ५ अतिजगती, ३ जगती, ८ द्विप- आर्षी पंक्तिः, ११, २०, २३ भुरिज, १० अनुष्टुप्, १३ द्विप- आर्षी अनुष्टुप्, १४, १५, १७, १८, २१, २२ जगत्, १६ अनुष्टुप्- हावद्वर्गभा परा जगती ।
द्वितीयोऽनुवाकः ।			
३	३१	भृग्वसिनाः शाला	अनुष्टुप् १ एका पंक्तिः, ७ पुरोष्णिक्, १५ एकाव- पञ्च-अतिहावद्वर्ग, १७ प्रस्तार पंक्तिः, २१ आस्तारपंक्ति, २५, ३१ द्विप- साजापाया बृहती, २६ साह्यी त्रिष्टुभ, २०-३० प्रसिद्धा नाम गायत्री, (२५-३१ एकाव- द्विपदा)
४	२४	ब्रह्मा	ऋषभः
			त्रिष्टुभ्, ८ भुरिक्, ६, १०, २४ जगत्, १३-१७, १९, २०, २३ अनुष्टुभः, १८ उपरिहाहिराद् बृहती, २१ आस्तारपंक्तिः ।

तृतीयोऽनुवाकः ।

५	१८	भुगः	अजः पंचोदयः	॥ ३ चतु० पुरोत्तिलकरी जगती; ४, १० जगती; १४, १७, २०-२० अनुष्टुभः (३० ककुभमती), १६ त्रिप० अनुष्टुप्. १८, २० त्रिप० विराट्गायत्री, २३ पुर उत्प्लिक्, २४ पंचप० अनुष्टुप्पिगाभीप- रिहाडाईता विराट् जगती, २९ पंचप० अनुष्टुप्पिगाभीपरिहाडाईता भुरिक्, ३१ मस० अष्टौ, ३२-३५ दशप० प्रकृती, ३६ दशपदा भाकृति; ३७ एकाव० द्वि० साम्नी त्रिष्टुभ ।
---	----	------	----------------	--

[एकाविंशः प्रपाठकः]

१	१२	जगती	अतिथ्या विद्या	
	(१) १०	"	"	१ त्रिप० गायत्री, २ त्रिप० आर्षी गायत्री ३, ५ साम्नी त्रिष्टुप्, ४, ९ आर्षी अनु- ष्टुभ; ५ आमुरी गायत्री, ६ त्रिप० साम्नी जगती, ८ वामुयी त्रिष्टुभ; १० साम्नी भुरिम्बहती, ११, १४-१६ साम्पवनुष्टुभ १२ विराट्गायत्री; १३ साम्नी त्रिष्टुप्पिक्, १४ त्रिप० विराट् भुरिगायत्री ।
	(२) ११	"	"	१८ विराट् पुरास्तादृहती, १९, २० साम्नी त्रिष्टुभ, २० आमुरी अनुष्टुभ, २१ साम्नी उत्प्लिग, २२, २८ साम्नी वृहती (२८ भुरिग), २३ आर्षी अनुष्टुभ; २४ त्रिप० स्वराहनुष्टुप; २५ आमुरी गायत्री, २६ साम्नी अनुष्टुभ, २७ त्रिप० आर्षी त्रिष्टुप्, ३० त्रिप० आर्षी पंक्तिः ।
	(३) ९	"	"	३१-३२, ३९ त्रिप० विपीकिकमथ्या गायत्री; ३० साम्नी वृहती, ३८ विपीकिकमथ्योत्प्लिक् ।
	(४) "	"	"	४०-४३ (१) प्राज्ञापमानुष्टुप; (१) ४४ भुरिक्, (२) ४०-४३ त्रिप० गायत्री; (३) ४४ चतु० प्रस्तारपंक्तिः ।
	(५) ४	"	"	४५ (१) साम्नी उत्प्लिक्; ४५ (२) पुर

उष्णिकः ४० (३), ४८ (३) साम्नी
मुरिग्वृहती, ४६ (१), ४० (१), ४८ (२)
साम्नी अनुष्टुभ, ४९ (२) त्रिप० त्रिप०
द्विराजनाम गावत्री, ४० (२) त्रिप०
विराद् विचमा नाम गावत्री, ४८ (१)
त्रिप० विरादनुष्टुप ।

(६) १४

४० आसुरी गावत्री, ४० साम्नी अनुष्टुप,
४१, ४३ त्रिप० आर्षी पक्षिः ४० एकप०
प्राजापत्या गावत्री, ४४-४५ आर्षी वृहती,
४० एकपदा आसुरी जगती, ४१ वाजुषा
त्रिष्टुप, ४० एकप० आसुरी उष्णिक ।

चतुर्थोऽनुवाकः ।

७	२६	ब्रह्मा	गोः	१ आर्षी वृहती, २ आर्षी उष्णिकः, ३, ४ आर्षी अनुष्टुभ २, १४, १५, १६ साम्नी वृहती, १८ आसुरी गावत्री, ७ त्रिपदा विषादिकमाया त्रिपदावत्री, २, १३ साम्नी गावत्री, १० पुरउष्णिकः, ११ १२ १३, २० साम्नी उष्णिकः, १८, २२ एकप० आसुरी जगती, १० एकप० आसुरी पक्षि, २० वाजुषा जगती, २१ आसुरी अनुष्टुभ, २३ एकप० आसुरी वृहती, २४ साम्नी मुरिग वृहती, २६ साम्नी त्रिष्टुप
---	----	---------	-----	--

८	२२	भृग्वेगिराः	सर्वशायां मयापपा- करणं.	अनुष्टुभ १० अनुष्टुभां ककुमती चतुष्प० उष्णिकः १५ विरादनुष्टुप २१ विराद् पञ्चा वृहती, २० पञ्चा पक्षिः ।
---	----	-------------	-------------------------------	--

पंचमोऽनुवाकः ।

९	२२	ब्रह्मा	वाम- अध्यात्मं आदिष्य-	त्रिष्टुभ, १० १४, १६, १८ जगत्प ।
१०	२८	१	गोः विराद् अध्यात्मं	१, १, ३, १४, १७, १८ जगत्प, २१ पञ्च० अतिमकरी, २४ अनु० पुर० मुरिग- ति जगती, २, २६, २७ मुरिग ।

ऋषिक्रमानुसार सूक्तविभाग ।

इस प्रकार इस नवम काण्डके ऋषि, देवता और छंदोंकी व्यवस्था है । अब इनका ऋषिक्रमानुसार सूक्तविभाग देखिये—

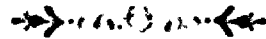
- १ ब्रह्मा ऋषिके ४, ६, ७, ९, १० ये पाँच सूक्त हैं,
- २ अधर्वा ,, १, २ ये दो सूक्त हैं,
- ३ भृगुगिरा ,, ३, ८ ,, ,,
- ४ भृगु ऋषिका ५ वां एक सूक्त है ।

इस तरह चार ऋषियोंके देखे मंत्र इस नवम काण्डमें हैं । इस काण्डमें ब्रह्मा ऋषिके मंत्र अधिक हैं । अब देवताक्रमानुसार सूक्तविभाग देखिये—

देवताक्रमानुसार सूक्तविभाग ।

- १ गौ देवताके ७ और १० ये दो सूक्त हैं,
- २ अध्यात्म ,, ९ ,, १० ,, ,,
- ३ मधु देवताका १ यह एक सूक्त है,
- ४ अश्विनी ,, १ ,, ,,
- ५ काम ,, २ ,, ,,
- ६ शाला देवता का ३ रा यह एक सूक्त है,
- ७ ऋषभः ,, ४ ,, ,,
- ८ अजा पशूदनः ,, ५ ,, ,,
- ९ आतिथ्या बिद्या ,, ६ ,, ,,
- १० सर्वशीर्षामयाशपाकरणं ,, ८ ,, ,,
- ११ वाम ,, ९ ,, ,,
- १२ आदित्य ,, ९ ,, ,,
- १३ बिराट् ,, १० ,, ,,

इस प्रकार तैरह देवताओंके शक्त इस नवम काण्डमें है। इस काण्डमें 'वर्चस्पणन' का पहिला शक्त है, 'सलिलगण' का नवमशक्त है और चतुर्थशक्तके 'पुष्टिकर्मण' है। इनती बातोंका विचार मनमें रखकर पाठक इस काण्डका मनन करें।





अथर्ववेदका स्वाध्याय ।

(अथर्ववेदका सुषोप भाग)

नवम काण्ड ।

मधुविद्या और गोमहिमा ।

(१)

(ऋषिः—अथर्वी । देवता—मधु, अश्विनौ)

दिवस्पृथिव्या अन्तरिक्षान् समुद्रादप्रेर्वीतान्मधुकशा हि जज्ञे ।

तां चायित्वामृतं वसाना इन्द्रिः प्रजाः प्रति नन्दन्ति मर्वाः ॥ १ ॥

अर्थ—(दिवः अन्तरिक्षान् पृथिव्याः) गोलोक, अन्तरिक्ष और पृथ्वी, (समुद्रान् जज्ञेः वातात्) समुद्रका जल, अग्नि और वायुसे (मधुकशा जज्ञे) मधुकशा उत्पन्न होती है । (अमृतं वसानां तां चायित्वा) अमृतका चारण करनेवाली उस मधुकशा को सुपूजित करके (मर्वाः प्रजाः इन्द्रिः प्रतिनन्दन्ति) सब प्रजाजन इन्द्रसे आनंदित होते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—पृथ्वी, आप, तेज, वायु आकाश और प्रकाशसे मधुर दूध देनेवाली गौ माता उत्पन्न हुई है, इस अमृतरूपी दूध देनेवाली गोमाता-की पूजा करनेसे सब प्रजाएं इन्द्रसे आनंदित होती हैं ॥ १ ॥

महत् पयो विश्वरूपमस्याः समुद्रस्य त्वोत रेत आहुः ।
 यत ऐति मधुकशा रराणा तत् प्राणस्तदमृतं निविष्टम् ॥ २ ॥
 पश्यन्त्यस्याश्चरितं पृथिव्यां पृथङ्नरो बहुधा मीमांसमानाः ।
 अग्नेर्वातान्मधुकशा हि जज्ञे मरुतामुग्रा नप्तिः ॥ ३ ॥
 मातादित्यानां दुहिता वसूनां प्राणः प्रजानाममृतस्य नाभिः ।
 हिरण्यवर्णा मधुकशा घृताचीं महान् भर्गश्चरति मर्त्येषु ॥ ४ ॥

अर्थ- (अस्याः पयः) इसका दूध (महत् विश्वरूपं) बड़ा विश्वरूपही है ।
 (उत त्वा समुद्रस्य रेतः आहुः) और तुझे समुद्रका वीर्य कहते हैं । (यतः
 मधुकशा रराणा एति) जहांसे यह मधुकशा शब्द करती हुई जाती है, (तत्
 प्राणः) वह प्राण है, (तत् निविष्टं अमृतं) वह सर्वत्र प्रविष्ट अमृत है ॥ २ ॥

(बहुधा पृथक् मीमांसमानाः नरः) बहुत प्रकारसे पृथक् पृथक् विचार
 करनेवाले लोग (पृथिव्याः) इस पृथ्वीपर (अस्याः चरितं पश्यन्ति) इसका
 चरित्र अवलोकन करते हैं । (मधुकशा अग्नेः वातात् जज्ञे) यह मधुकशा
 अग्नि और वायुसे उत्पन्न हुई है । यह (मरुतां उग्रा नप्तिः) मरुतों की
 उग्र पुत्री है ॥ ३ ॥

(आदित्यानां माता) यह आदित्योंकी माता, (वसूनां दुहिता) वसु-
 ओंकी दुहिता, (प्रजानां प्राणः) प्रजाओंका प्राण और (अमृतस्य
 नाभिः) यह अमृतका केन्द्र है, (हिरण्यवर्णा मधुकशा घृताची) सुवर्ण
 के समान वर्णवाली यह मधुकशा घृतका सिंचन करनेवाली है, यह (म-
 र्त्येषु महान् भर्गः चरति) मर्त्योंमें यह महान् तेजहि संचार करता है ॥ ४ ॥

भावार्थ- इस गौमाताका दूध मानो संपूर्ण विश्वकी बड़ी शक्ति है ।
 अथवा मानो, यह संपूर्ण जलतत्त्वका सार है । जो यह शब्द करती हुई
 गौ है, वह सबका प्राण है और उसका दूध प्रत्यक्ष अमृत है ॥ २ ॥

विचार करनेवाले मनुष्य इस पृथ्वीपर इस गौका चरित्र देखते हैं । यह
 मधुर रस देनेवाली गौ अग्नि और वायु से उत्पन्न हुई है, अतः इसको
 मरुतों—वायुओं—की प्रभावशालिनी पुत्री कहते हैं ॥ ३ ॥

यह गौ आदित्योंकी माता, वसुओंकी पुत्री, प्रजाओंका प्राण है और
 यही अमृतका केन्द्र है । यह उत्तम रंगवाली, घृत देनेवाली और मधुर
 रसका निर्माण करनेवाली गौ सब मर्त्योंमें एक बड़े तेजकी मूर्तीहि है ॥ ४ ॥

मधोः कशामजनयन्त देवास्तस्या गर्भो अभवद् विश्वरूपः ।
 तं ज्ञातं तरुणं पिपर्ति माता स जातो विश्वा भुवना वि चष्टे ॥ ५ ॥
 कस्तं प्रवेद क उ तं चिकेत यो अस्या हृदः कलशः सोमधानो अक्षितः ।
 ब्रह्मा सुमेधाः सो अस्मिन् मदेत ॥ ६ ॥
 स तौ प्रवेद स उ तौ चिकेत यावस्याः स्तनौ महस्रधारावक्षितौ ।
 ऊर्जं दुहाते अनपस्फुरन्तौ ॥ ७ ॥

अर्थ— (देवाः मधोः कशां अजनयन्त) इस मधुकी कशाको देवोंने बनाया है, (तस्याः विश्वरूपः गर्भः अभवत्) उसका यह विश्वरूप गर्भ हुआ है । (तं तरुणं जातं माता पिपर्ति) उस जन्मे हुए तरुणको वही माता पालती है, (सः जातः विश्वा भुवना विचष्टे) वह होतेहि सब भुवनोंका निरीक्षण करता है ॥ ५ ॥

(कः तं प्रवेद) कौन उसे जानता है, (कः उ तं चिकेत) कौन उसका विचार करता है ? (अस्याः हृदः) इसके हृदयके पास (यः सोमधानः कलशः अक्षितः) जो सोमरससे भरपूर पूर्ण कलश विद्यमान है, (अस्मिन्) इसमें (सः सुमेधाः ब्रह्मा) वह उत्तम मेधावाला ब्रह्मा (मदेत) आनंद करेगा ॥ ६ ॥

(सः तौ प्रवेद) वह उनको जानता है, (सः उ तौ चिकेत) वह उनका विचार करता है, (यो अस्याः सहस्रधारौ अक्षितौ स्तनौ) जो इसके सहस्र-धारायुक्त अक्षय स्तन हैं । वे (अनपस्फुरन्तौ ऊर्जं दुहाते) अविचलित होते हुए बलवान रसका दोहन करते हैं ॥ ७ ॥

भावार्थ— देवोंने इस गौका निर्माण किया है, इसको सब प्रकारके रंगरूपका गर्भ होता है, बच्चा होनेके बाद वह उसका प्रेमसे पालन करती है, वह बड़ा होकर सब स्थानको देखता है ॥ ५ ॥

इस गौके अन्दर सोमरससे परिपूर्ण कलश अक्षयरूपसे रखा है, उस कलशको कौन जानता है और कौन उसका भला विचार करता है ? इसी के दुग्धरूपी रससे अपनी मेधाकी वृद्धी करनेवाला ब्रह्मा आनन्दित होता है ॥ ६ ॥

जो इस गौके दो स्तन हजारों धाराओंसे सदा अन्नरस देते हैं, कौन उनका महत्त्व जानता है और कौन उनके महत्त्वका विचार करता है ? ॥ ७ ॥

हिङ्कारिकृती बृहती वयोधा उच्चैर्घोषाभ्येति या व्रतम् ।
 त्रीन् घर्मानभि वावशाना मिमाति मायुं पयते पयोभिः ॥ ८ ॥
 यामापीनामुपसीदन्त्यापः शाकवरा वृषभा ये स्वराजः ।
 ते वर्षन्ति ते वर्षयन्ति तद्विदे काममूर्जमार्पः ॥ ९ ॥
 स्तनयित्नुस्ते वाक् प्रजापते वृषा शुष्मं क्षिपसि भूम्यामधि ।
 अग्नेर्वातान्मधुकशा हि जज्ञे मरुतामुग्रा नमिः ॥ १० ॥ (१)

अर्थ- (या हिङ्कारिकृती) जो हिंकार करनेवाली (वयो-धा उच्चैर्घोषा) अन्न देनेवाली उच्च स्वरसे पुकारनेवाली (व्रतं अभ्येति) व्रतके स्थानको प्राप्त होती है। (त्रीन् घर्मान् अभि वावशाना) तीनों यज्ञोंको वशमें रखनेवाली (मायुं मिमाति) सूर्यका मापन करती है और (पयोभिः पयते) दूधकी धाराओंसे दूध देती है ॥ ८ ॥

(ये वृषभाः) जो वर्षासे भरनेवाले बैल (स्वराजः शाकवराः आपः) तेजस्वी शक्तिशाली जल (या आपीनां उपसीदन्ति) जिस पान करनेवालीके पास पहुंचते हैं। (तद्विदे कामं ऊर्जं) तत्त्वज्ञानीको यथेच्छ बल देनेवाले अन्नकी (ते वर्षन्ति) वे वृष्टी करते हैं, (ते वर्षयन्ति) वे वृष्टी कराते हैं ॥ ९ ॥

हे (प्रजापते) प्रजापालक ! (ते वाक् स्तनयित्नुः) तेरी वाणी गर्जना करनेवाला मेघ है, तू (वृषा) बलवान होकर (भूम्यां अधि शुष्मं क्षिपसि) भूमिपर बलको फेंकता है। (अग्नेः वातात् मधुकशा हि जज्ञे) अग्नि और वायुसे मधुकशा उत्पन्न हुई है, यह (मरुतां उग्रा नमिः) मरुतोंकी उग्र पुत्री है ॥ १० ॥

भावार्थ- यह गौ हिंकार करनेवाली, अन्न देनेवाली, उच्च स्वरसे हिंकार करनेवाली यज्ञभूमिमें विचरती है, तीनों यज्ञोंका पालन करती हुई यज्ञके द्वारा कालका मापन करती है और यज्ञके लिये अपना दूध देती है ॥ ८ ॥

जो बैल अपने तेज और बलसे पुष्ट गौओंके समीप होते हैं वे तत्त्वज्ञानीको यथेच्छ बल देनेवाले अन्न की वृष्टी करते और कराते हैं ॥ ९ ॥

हे प्रजापालक देव ! मेघगर्जना तेरी वाणी है, उससे तू भूमिके ऊपर अपना बल फेंकता है, वही गाय और बैलके रूपसे अग्नि और वायुका सत्त्वांश लेकर उत्पन्न हुआ है ॥ १० ॥

यथा सोमः प्रातःसवने अश्विनोर्भवति प्रियः ।
 एवा मे अश्विना वर्च आत्मनि प्रियताम् ॥ ११ ॥
 यथा सोमो द्वितीये सर्वेन्द्राग्न्योर्भवति प्रियः ।
 एवा मे इन्द्राग्नी वर्च आत्मनि प्रियताम् ॥ १२ ॥
 यथा सोमस्तृतीये सर्वे ऋभूणां भवति प्रियः ।
 एवा मे ऋभवो वर्च आत्मनि प्रियताम् ॥ १३ ॥
 मधुं जनिषीय मधुं वंशिषीय ।
 पर्यस्वान् आगमं तं मा सं सृज वर्चसा ॥ १४ ॥

अर्थ- (यथा सोमः प्रातःसवने) जैसा सोमरस प्रातःसवन यज्ञमें (अश्विनोः प्रियः भवति) अश्विनी देवोंको प्रिय होता है, हे अश्विदेवो ! (एवा मे आत्मनि) इस प्रकार मेरे आत्मामें (वर्चः प्रियतां) तेज धारण करें ॥ ११ ॥

(यथा सोमः द्वितीये सवने) जैसा सोमरस द्वितीयसवन—माध्यंदिन-सवन—यज्ञमें (इन्द्राग्न्योः प्रियः भवति) इन्द्र और अग्निको प्रिय होता है, हे इन्द्र और अग्नि ! इस प्रकार मेरे आत्मामें तेज धारण करें ॥ १२ ॥

जैसा सोम (तृतीये सवने) तृतीयसवन—सायंसवन—यज्ञमें (ऋभूणां प्रियः भवति) ऋभूओंको प्रिय होता है, हे ऋभुदेवो ! इस प्रकार मेरे आत्मामें तेज धारण करें ॥ १३ ॥

(मधु जनिषीय) मीठास उत्पन्न करूंगा, (मधु वंशिषीय) मीठास प्राप्त करूं । हे अग्ने ! (पर्यस्वान् आगमं) दूधलेकर मैं आगया हूं, (तं मा वर्चसा संसृज) उस मुझको तेजसे संयुक्त कर ॥ १४ ॥

भावार्थ- जिस प्रकार सोम प्रातःसवनमें अश्विनी देवोंको प्रिय होता है, उस प्रकार मेरे अन्दर तेज प्रिय होकर बढे ॥ ११ ॥

जैसा सोम माध्यंदिन सवनमें इन्द्र और अग्निको प्रिय होता है वैसा मेरे अन्दर तेज प्रिय होकर बढे ॥ १२ ॥

जिस तरह सोम सायंसवनमें ऋभूओंको प्रिय होता है उस तरह मेरे अंदर तेज प्रिय होकर बढे ॥ १३ ॥

मधुरता उत्पन्न करता हूं, मधुरता संपादन करता हूं, हे देव ! मैं दूध समर्पण करनेके लिये आगया हूं, अतः मुझे इससे तेजसे युक्त कर ॥ १४ ॥

सं माग्ने वर्चसा सृज सं प्रजया समायुषा ।

विद्युर्मे अस्य देवा इन्द्रो विद्यात् सह ऋषिभिः ॥ १५ ॥

यथा मधु मधुकृतः संभरन्ति मध्वावधि ।

एवा मे अश्विना वर्च आत्मनि प्रियताम् ॥ १६ ॥

यथा मक्षा इदं मधु न्यञ्जन्ति मध्वावधि ।

एवा मे अश्विना वर्चस्तेजो बलमोजश्च प्रियताम् ॥ १७ ॥

अर्थ— हे अग्ने ! (मा वर्चसा) मुझे तेजसे (प्रजया आयुषा) प्रजासे और आयुसे (सं सं सं सृज) संयुक्त कर । (अस्य मे देवाः विद्युः) इस मुझे सब देव जानें, (ऋषिभिः सह इन्द्रः विद्यात्) ऋषियोंके साथ इन्द्रभी मुझे जानें ॥ १५ ॥

(यथा मधुकृतः) जैसे मधुमक्खियां । (मधौ अधि) अपने मधुमें (मधु संभरन्ति) मधु संचित करती हैं, हे अश्विदेवो ! (एवा मे) इस प्रकार मेरा (वर्चः तेजः बलं ओजः च) ज्ञान, तेज, बल और वीर्य (प्रियतां) संचित हो, बढ़ता जाय ॥ १६ ॥

(यथा मक्षाः) जैसी मधुमक्षिकाएं (इदं मधु) इस मधुको (मधौ अधि न्यञ्जन्ति) अपने पूर्वसंचित मधुमें संगृहीत करते हैं, इस प्रकार हे अश्विदेवो ! मेरा ज्ञान, तेज, बल और वीर्य संचित हो, बढ़े ॥ १७ ॥

भावार्थ— हे देव ! मुझे तेज, प्रजा और दीर्घ आयुसे युक्त कर । देव इस मेरे अभिलषितको जानें और ऋषि भी समझलें ॥ १५ ॥

जिस प्रकार मधुमक्खियां अपने मधु स्थानमें स्थान स्थानसे मधु इकट्ठा करके भर देती हैं, उस उकार मेरे अन्दर ज्ञान, तेज, बल और वीर्य संचित हो जावे ॥ १६ ॥

जैसी मधुमक्खियां अपने मधुस्थानमें स्थान स्थानसे मधु इकट्ठा करके भर देती हैं, उस प्रकार मेरे अन्दर ज्ञान, तेज, बल और वीर्य भरता रहे ॥ १७ ॥

यद् गिरिषु पर्वतेषु गोष्वश्वेषु यन्मधु ।

सुरायां सिच्यमानायां यत् तत्र मधु तन्मयि ॥ १८ ॥

अश्विना सारघेण मा मधुनाङ्क्तं शुभस्पती ।

यथा वर्चस्वतीं वाचमावदानि जनान् अनु ॥ १९ ॥

स्तनयित्नुस्ते वाक् प्रजापते वृषा शुष्मं क्षिपसि भूम्यां दिवि ।

तां पशव उप जीवन्ति सर्वे तेनो सेपमूर्जं पिपतिं ॥ २० ॥

अर्थ—(यथा गिरिषु पर्वतेषु) जैसा पहाड़ों और पर्वतों पर और (गोषु अश्वेषु यत् मधु) गौवों और अश्वों में जो मीठास है, (सिच्यमानायां सुरायां) सिंचित होनेवाले वृष्टिजल में (तत्र यत् मधु) उसमें जो मधु है। (तत् मयि) वह मुझमें हो ॥ १८ ॥

हे (शुभस्पती अश्विनौ) शुभके पालक अश्विदेवो! (सारघेण मधुना मा सं अङ्क्तं) मधुमक्खियोंके मधुसे मुझे युक्त करें। (यथा) जिससे (वर्चस्वतीं वाचं) तेजस्वी भाषण (जनान् अनु आवदानि) लोगोंके प्रति मैं बोलूँ ॥ १९ ॥

हे (प्रजापते) प्रजापालक! तू (वृषा) बलवान है और (ते वाक् स्तनयित्नुः) तेरी वाणी मेघगर्जना है, तू (भूम्यां दिवि) भूमिपर और गुलोकमें (शुष्मं क्षिपसि) बलकी वर्षा करता है, (तां सर्वे पशवः) उप-जीवन्ति) उसपर सब पशुओंकी जीविका होती है। और (तेन उ सा इषं ऊर्जं पिपतिं) उससे वह अन्न और बलवर्धक रसकी पूर्णता करती है ॥ २० ॥

भावार्थ—जैसी पहाड़ों और पर्वतोंमें, गौओं और घोड़ोंमें और वृष्टी जलमें मधुरता है वैसी मधुरता मेरे अन्दर हो जावे ॥ १८ ॥

हे देवो! मुझे उस मधुमक्खियोंके मधुसे संयुक्त कीजिये। जिससे मैं यह मीठास का संदेश संपूर्ण जनोके पास पहुंचाऊँ ॥ १९ ॥

हे प्रजापालक देव! तू बलवान है और मेघगर्जना तेरी वाणी है। तूही गुलोकसे भूलोकतक बलकी वृष्टी करता है, सब जीव उसपर जीवित रहते हैं। वह अन्न और बल हम सबको प्राप्त हो ॥ २० ॥

ॐ नमः पृथिवी दण्डोऽन्तरिक्षं गर्भो द्यौः कशा विद्युत् प्रकशो हिरण्ययो बिन्दुः ॥ २१ ॥
 यो वै कशायाः सप्त मधूनि वेद मधुमान् भवति ।
 ब्राह्मणश्च राजा च धेनुश्चानड्वांश्च व्रीहिश्च यवश्च मधु सप्तमम् ॥ २२ ॥
 मधुमान् भवति मधुमदस्याहार्यं भवति ।
 मधुमतो लोकान् जयति य एवं वेद ॥ २३ ॥

अर्थ—(पृथिवी दण्डः) पृथिवी दण्ड है, (अन्तरिक्षं गर्भः) अन्तरिक्ष मध्य-
 भाग है, (द्यौः कशा) सुलोक तन्तु हैं, (विद्युत् प्रकशः) बिजुली उसके
 धागे हैं, और (हिरण्ययः बिन्दुः) सुवर्णमय बिन्दु हैं ॥ २१ ॥

(यः वै कशायाः सप्त मधूनि वेद) जो इस कशाके सात मधु जानता
 है, वह (मधुमान् भवति) मधुवाला होता है । (ब्राह्मणः च राजा च)
 ब्राह्मण और राजा, (धेनुः च अनड्वान् च) गाय और बैल, (व्रीहिः च
 यवः च) चावल और जौ तथा (मधु सप्तकं) सातवां मधु हैं ॥ २२ ॥

(यः एवं वेद) जो यह जानता है वह (मधुमान् भवति) मधुवाला
 होता है, (अस्य आहार्यं मधुमत भवति) उसका सब संग्रह मधुयुक्त
 होता है । और (मधुमतः लोकान् जयति) मीठे लोकोंको प्राप्त करता
 है ॥ २३ ॥

भावार्थ— भूमि दण्ड, अन्तरिक्ष मध्यभाग, सुलोक बडे बाल और
 बिजली सूक्ष्म बाल हैं और उसपर सुवर्णका बिंदु भूषणके सदृश है । यह
 गौका विश्वरूप है ॥ २१ ॥

जो इस गौके सात मीठे रूप जानता है, वह मधुर बनता है । ब्राह्मण,
 क्षत्रिय, गाय, बैल, चावल और जौ और शहद सातवां है । गौके ये सात
 मीठे रूप हैं ॥ २२ ॥

जो इस बातको जानता है, वह मधुर होता है, मधुवाला होता है
 और मीठे स्थान प्राप्त करता है ॥ २३ ॥

यद् वीध्रे स्तनयति प्रजापतिरेव तत् प्रजाभ्यः प्रादुर्भवति ।
 तस्मात् प्राचीनोपवीतस्तिष्ठे प्रजापतेनु मा बुध्यस्वेति ।
 अन्वेनं प्रजा अनु प्रजापतिर्बुध्यते य एवं वेद ॥ २४ ॥ (२)

अर्थ- (यत् वीध्रे स्तनयति) जो आकाशमें गर्जना होती है, (प्रजापतिः एव तत्) प्रजापति हि वह (प्रजाभ्यः प्रादुर्भवति) प्रजाओंके लिये, मानो, प्रकट होता है । (तस्मात् प्राचीनोपवीतः तिष्ठे) हमलिये दायें भागमें बस्त्र लेकर खड़ा होता हूं, हे (प्रजापते) प्रजापालक ईश्वर ! (मा अनु बुध्यस्व) मेरा स्मरण रखो । (यः एवं वेद) जो यह जानता है, (एनं प्रजाः अनु) इसके अनुकूल प्रजाएं होती हैं तथा इसको (प्रजापतिः अनु-बुध्यते) प्रजापति अनुकूलतापूर्वक स्मरणमें रखना है ॥ २४ ॥

भावार्थ- जो आकाशमें गर्जना होती है, मानो वह परमेश्वर संपूर्ण प्रजाओंके लिये प्रकट होकर उपदेश करता है । उस समय लोग ऐसी प्रार्थना करें कि “हे देव ! हे प्रजापालक ! मेरा स्मरण कर, मुझे न भूल जा ।” जो इसप्रकार प्रार्थना करना जानता है, प्रजाजन उसके अनुकूल होते हैं और प्रजापालक परमेश्वर भी उसका स्मरणपूर्वक भला करता है ॥ २४ ॥

सात मधु ।

इस सूक्तमें विशेष कर गौकी महिमा वर्णन की है । इस सूक्तका भावार्थ विचार-पूर्वक पढ़नेसे पाठक स्वयं इस सूक्तमें कहीं गोमहिमा जान सकते हैं । वेदकी दृष्टिसे गौका महत्त्व कितना है, यह बात इस सूक्तके प्रत्येक मंत्रमें सुबोध रीतिसे दर्शायी है ।

यह गौ संपूर्ण जगत्का सत्त्व है, यह पृथ्वी, आप, तेज, वायु, आकाश और प्रकाश का सार है । इस गौमें अमृत रस है जिसका पान करनेसे सब प्रजाजन आनंदित और हृष्टपुष्ट होते हैं । इसका दूध मानो संपूर्ण जगत्के पदार्थोंका वीर्य ही है, वही सबका प्राण और वही अद्भुत अमृत है । विशेष मननशील मनुष्य ही इस गौके महत्त्वको जानते हैं और अनुभव कर सकते हैं । यह गौ देवोंकी माता है और यही सब प्रजाजनोंका प्राण है, क्योंकि इसमें अमृतका मधुर रस भरा है । जो इसका दूध पीते हैं वे माने अपने अंदर अमृत रस लेते हैं और उस कारण वे दीर्घायुवी होते हैं । संपूर्ण अमृत रस का केन्द्र स्रोत इस गौके अंदर है ।

अमृतका कलश ।

यह गौ संपूर्ण देवोंने अपनी दिव्य शक्तियोंसे उत्पन्न की है । उन्होंने इसके दुग्धा-शयमें अमृतका घड़ा रखा है । जो अपनी मेधाबुद्धी बढ़ाना चाहते हैं वे इस दूधरूपी अमृतको अवश्य पीयें । इस गौके स्तनोंसे जो दुग्धरूपी रस निकलता है, वह मानो अद्भुत बल देनेवाला रस है ।

यह अन्नरस देती है, यज्ञ कराती है, व्रतधारण कराती है, और अपने दूधसे सबको पुष्ट करती है । बैल भी हम सबको अनंत प्रकारके सुख देता है । जिस प्रकार सोमरस देवोंको प्रिय होता है, उस प्रकार गायका दूध मनुष्योंको प्रिय होवे और उससे मनुष्योंका तेज बढ़े । जिस प्रकार मधुमक्खियां थोड़ा थोड़ा मधु इकट्ठा करती हैं और अपने मधुस्थानमें उसका संग्रह करती हैं, इसी प्रकार मनुष्योंको उचित है कि वे इन मधुमक्खियोंका अनुकरण करें और अपने अन्दर ज्ञान, तेज, बल, वीर्य और पराक्रम बढ़ावें । शनैः शनैः प्रयत्न करनेपर मनुष्य इन बातोंको अपने अन्दर बढ़ा सकता है ।

पहाड़ों पर्वतों और संपूर्ण जगत्में सर्वत्र मधु भरा है, वह मधुरता मेरे अन्दर आवे । इस गौके रूपसे परमेश्वरकी अद्भुत शक्ति हि पृथ्वीपर मनुष्योंकी उन्नतिके लिये आगयी है । यह बात स्मरणमें अवश्य रखिये ।

इस मधुरताके सात रूप इस पृथ्वीपर हैं, एक मधुरता ब्राह्मणोंमें ज्ञान रूपसे है, दूसरी मधुरता क्षत्रियोंमें पराक्रमके रूपसे विद्यमान है, इसी प्रकार गौ, बैल, चावल, जौ और शहदमें भी मधुरता है । अतः जो मनुष्य यह बात जानता है वह इन सात पदार्थोंसे अपनी उन्नति करता है ।

यह सब उपदेश स्वयं प्रजापतिने किया है, अतः पाठक इसका स्मरण रखे और इन सात शहदोंसे अपना बल बढ़ावें ।

इस सूक्तका यह आशय स्पष्ट है, अतः अधिक विवरण करनेकी आवश्यकता नहीं है ।

काम ।

[२]

(ऋषिः- अथर्वा । देवता-काम ।)

सपत्नहर्नमृषभं घृतेन कामं शिक्षामि हविषाज्येन ।

नीचैः सपत्नान् मम पादय त्वमभिष्टुतो महता वीर्येण ॥ १ ॥

यन्मे मनसो न प्रियं न चक्षुषो यन्मे बभस्ति नाभिनन्दति ।

तद् दुष्वप्यं प्रति मुञ्चामि सपत्ने कामं स्तुत्वोदहं भिदेयम् ॥ २ ॥

अर्थ- (सपत्नहनं ऋषभं कामं) शत्रुका नाश करनेवाले बलवान काम को मैं (हविषा आज्येन घृतेन शिक्षामि) हवि घी आदिसे शिक्षित करता हूँ । (महता वीर्येण अभिष्टुतः) बड़े पराक्रमसे प्रशंसित होकर (त्वं) तू (मम सपत्नान् नीचैः पादय) मेरे शत्रुओंको नीचे कर दे ॥ १ ॥

(यत् मे मनसः न प्रियं) जो मेरे मनको प्रिय नहीं है, (यत् मे चक्षुषः प्रियं न) जो मेरे आँखोंको प्रिय नहीं है, (यत् मे बभस्ति) जो मेरा तिरस्कार करता है और (न अभिनन्दति) न मुझे आनन्द देता है, (तत् दुष्वप्यं) वह बुरा स्वप्न (सपत्ने प्रतिमुञ्चामि) शत्रुके ऊपर भेज देता हूँ । (अहं कामं स्तुत्वा) मैं काम की स्तुति करके (उत् भिदेयं) ऊपर उठता हूँ ॥ २ ॥

भावार्थ-काम (संकल्प) बड़ा बलवान है और शत्रुका नाश करनेवाला है, उसको यज्ञसे शिक्षित करना चाहिये । वह बड़े वीर्यसे प्रशंसित हुआ तो शत्रुओंको नीचे करता है ॥ १ ॥

जो मेरे मन और अन्य इंद्रियोंको अप्रिय है, जो मुझे आनंदित नहीं करता, जो मेरा तिरस्कार करता है, वह दुष्ट स्वप्न मेरे शत्रुकी ओर जावे । मैं इस संकल्पशक्तिके द्वारा उन्नत होता हूँ ॥ २ ॥

दुष्स्वप्न्यं काम दुरितं च कामाप्रजस्तामस्वगतामवर्तिम् ।

उग्र ईशानः प्रति मुञ्च तस्मिन् यो अस्मभ्यमंहूणा चिकित्सात् ॥ ३ ॥

नुदस्व काम प्र णुदस्व कामावर्ति यन्तु मम ये सपत्नाः ।

तेषां नुत्तानामधमा तमांस्यग्ने वास्तूनि निर्दह त्वम् ॥ ४ ॥

प्राप्ति सा ते काम दुहिता धेनुरुच्यते यामाहुर्वाचं कवयो विराजम् ।

तया सपत्नान् परिवृङ्गिष्ये मम पर्येनान् प्राणः पशवो जीवनं वृणक्तु ॥ ५ ॥

अर्थ- हे काम ! (दुष्स्वप्न्यं) दुष्ट स्वप्न, (दुरितं च) पाप और (अप्रज-
स्तां) संतान न होना, (अ-स्व-गतां) निर्धन अवस्था, (अवर्ति) आपत्ती
इन सबको, हे (उग्र काम) बलवान् काम ! तू (ईशानः तस्मिन् प्रति-
मुञ्च) सबका स्वामी है, अतः उसपर छोड़ कि (यः अस्माकं अंहूणा
चिकित्सात्) जो हम सबको पापमय विपत्तिमें डालनेका विचार करता
है ॥ ३ ॥

हे काम (नुदस्व) उनको दूर कर, हे काम ! उनको (प्रणुदस्व) हटा-
दे, (ये मम सपत्नाः) जो मेरे शत्रु हैं वे (अवर्ति यन्तु) आपत्ती को
प्राप्त हों । हे अग्ने ! (अधमा तमांसि नुत्तानां) गाढ़ अंधारमें भेजे हुए उन
शत्रुओंके (त्वं वास्तूनि निर्दह) तू घरोंको जला दे ॥ ४ ॥

हे काम ! (सा धेनुः ते दुहिता उच्यते) वह धेनु तेरी दुहिता कही
जाती है, (यां कवयः विराजं वाचं आहुः) जिस को कवि लोग विशेष
तेजस्वी वाणी कहते हैं । (ये मम) जो मेरे शत्रु हैं उन (सपत्नान् तथा
परिवृङ्गिष्ये) शत्रुओंको उससे दूर हटा दे । (एनान्) इन शत्रुओंको (प्राणः
पशवः जीवनं परि वृणक्तु) प्राण, पशु और आयु छोड़ देवे ॥ ५ ॥

भावार्थ-दुष्ट स्वप्न, पाप, संतान न होना, दारिद्र्य, आपत्ति आदि सब
हमारे उन शत्रुओंको प्राप्त हों, जो कि हमें पापमूलक विपत्तिमें डालनेका
विचार करते हैं ॥ ३ ॥

काम हमारे शत्रुओंका दूर हटादेवे, उन शत्रुओंको विपत्ति घेरे और
जब वे शत्रु गाढ़ अन्धकारमें पड़ें तब अग्नि उनके घरोंको जला देवे ॥ ४ ॥

सब कविलोक कहते हैं कि वाणी काम की पुत्री है । इस वाणीके द्वारा
हमारे सब शत्रु दूर हों और उनको प्राण, पशु, और आयु छोड़ देवे ॥ ५ ॥

कामस्येन्द्रस्य वरुणस्य राज्ञो विष्णोर्वलेन सवितुः सवेन ।
 अग्नेर्होत्रेण प्र णुदे सपत्नांलुम्बीव नावमुदकेषु धीरः ॥ ६ ॥
 अध्यक्षो वाजी मम काम उग्रः कृणोतु मह्यमसपत्नमेव ।
 विश्वे देवा मम नाथं भवन्तु सर्वे देवा हवमा यन्तु म इमम् ॥ ७ ॥
 इदमाज्यं घृतवज्जुषाणाः कामज्येष्ठा इह मादयध्वम् ।
 कृण्वन्तो मह्यमसपत्नमेव ॥ ८ ॥

अर्थ— (कामस्य इन्द्रस्य वरुणस्य राज्ञः) काम इन्द्र वरुण राजा इनके और (विष्णोः बलेन सवितुः सवेन) विष्णुके बल और सविताकी प्रेरणासे तथा (अग्नेः होत्रेण) अग्निके हवनसे (सपत्नान् प्रणुदे) शत्रुओंको दूर करता हूँ । (हव) जैसा (उदकेषु शंभी धीरः नावं) जलमें घेर्यवान् धीवर नौकाको चलाना है ॥ ६ ॥

(उग्रः वाजी कामः) प्रतापी बलवान् काम (मम अध्यक्षः) मेरा अधिष्ठाता है । (मह्यं असपत्नं एव कृणोतु) मुझे सपत्नरहित करे । (विश्वे देवाः मम नाथं भवन्तु) सब देव मेरे नाथ हों, (सर्वे देवाः मे इमं हवं आपन्तु) सब देव मेरे इस हवन के स्थानमें आवें ॥ ७ ॥

हे (कामज्येष्ठाः) कामको श्रेष्ठ माननेवाले सब देवो ! (इदं घृतवत् आज्यं जुषाणाः) इस घृतयुक्त हवनका सेवन करते हुए (इह मादयध्वं) यहां हर्षित हो जाओ और (मह्यं असपत्नं एव कृण्वन्तः) मुझे शत्रुरहित करो ॥ ८ ॥

भावार्थ— जिस प्रकार अगाध समुद्रमें नौकाको धीवर लोग चलाते हैं, उन प्रकार देवोंकी शक्तिसे मैं शत्रुओंको इस भवसागरमें प्रेरित करता हूँ ॥ ६ ॥

बलवान्, प्रतापी काम मेरा अधिष्ठाता है । वह मुझे शत्रुरहित करे, देव मेरे स्वामी बनें, सब देव मेरे यज्ञमें आजाय ॥ ७ ॥

काम जिनमें श्रेष्ठ हैं ऐसे सब देव इस यज्ञमें आकर इस हवन द्वारा आनंदित हों और मुझे शत्रुरहित बनावें ॥ ८ ॥

इन्द्राग्नी काम सरथं हि भूत्वा नीचैः सपत्नान् मम पादयाथः ।
 तेषां पन्नानामधमा तमांस्यग्ने वास्तून्यनुनिर्दह त्वम् ॥ ९ ॥
 जहि त्वं काम मम ये सपत्ना अन्धा तमांस्यव पादयैनान् ।
 निरिन्द्रिया अरसाः सन्तु सर्वे मा ते जीविषुः कतमच्चनाहः ॥ १० ॥ (३)
 अवधीत् कामो मम ये सपत्ना उरुं लोकमकरन्मह्यमेधतुम् ।
 मह्यं नमन्ता प्रदिशश्चतस्रो मह्यं षडुर्वीधृतमा वहन्तु ॥ ११ ॥

अर्थ- हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि ! हे काम ! तुम सब (सरथं हि भूत्वा) समान रथपर चढ़नेवाले होकर (मम सपत्नान् नीचैः पादयाथः) मेरे शत्रुओंको नीचे करो । (तेषां अधमा तमांसि पन्नानां) वे शत्रु गाढ अन्धकारमें पड़नेपर हे अग्ने ! (त्वं वास्तूनि अनुनिर्दह) तू उनके घरोंको जला दे ॥ ९ ॥

(ये मम सपत्नाः) जो मेरे शत्रु हैं, उनका (त्वं जहि) तू नाश कर दे । तथा (एनान् अधमा तमांसि अव पादय) इनको हीन अन्धकारमें गिरा दे । वे (सर्वे निरिन्द्रियाः अरसाः सन्तु) सब इंद्रियरहित और रसहीन हों, (ते कतमच्चन अहः मा जीविषुः) वे एक भी दिन न जीवित रहें ॥ १० ॥

(मम ये सपत्नाः) मेरे जो शत्रु हैं उनका (कामः अवधीत्) काम ने वध किया है । तथा उमने (मह्यं एधतुं उरुं लोकं अकरत्) मुझे बढनेके लिये विस्तृत स्थान दिया है । (चतस्रः प्रदिशः मह्यं नमन्तां) चारों दिशाएं मेरे सन्मुख नम्र हों । (षट् उर्वीः मह्यं घृतं आवहन्तु) छः भूमिके विभाग मेरे पास घृत ले आवें ॥ ११ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र, अग्नि और काम ! तुम सब मेरे शत्रुओंको नीचे गिरा दो । वे अन्धकारमें भागें और पश्चात् अग्नि उनके घरोंको जलावे ॥ ९ ॥

मेरे शत्रुओंका तू नाश कर । वे गाढ अन्धकारमें जाय । वे सब इंद्रियहीन और सन्वहीन बनें और एक दिन भी न जीवित रहें ॥ १० ॥

इस काम से मेरे शत्रु दूर होगये और मुझे बड़ा कार्यक्षेत्र प्राप्त हुआ है । चारों दिशाओंमें रहनेवाले लोग मेरे सामने नम्र होचुके हैं और सब पृथ्वी मेरे अधिकारमें आचुका है ॥ ११ ॥

तेधि॒राञ्चः प्र प्ल॑वन्तां छिन्ना नौरि॑व बन्ध॑नात् ।

न साय॑कप्रणु॒त्तानां पुन॑रस्ति निव॑र्तनम् ॥ १२ ॥

अ॒ग्निर्य॑व इन्द्रो॒ यवः सोमो॑ यवः । ✓

य॒वया॑वानो दे॒वा या॑वयन्त्वेनम् ॥ १३ ॥

अस॑र्ववीरश्चरतु प्रणु॒त्तो द्वे॒ष्यो मि॒त्राणां॑ परि॒वर्ग्यः॑ स्वाना॑म् ।

उ॒त पृथि॑व्याम॒व स्य॑न्ति वि॒द्युत॑ उ॒ग्रो वो॑ दे॒वः प्र मृ॑णत् स॒पत्नान् ॥ १४ ॥

अर्थ— (बन्धनात् छिन्ना नौः इव) बन्धनसे कटी हुई नौकाकं समान (वे अधराञ्चः प्र प्लवन्तां) वे नीचे बहते जाय । (सायकप्रणुत्तानां पुनः निवर्तनं न अस्ति) बाणोंसे भगाये शत्रुओंका फिर वापस आना नहीं हो सकता ॥ १२ ॥

(अग्निः यवः) अग्नि हटानेवाला है, (इन्द्रः यवः) इन्द्र हटानेवाला है और (सोमः यवः) सोम भी हटानेवाला है । (यवयावानः देवाः) हटानेवालेको हटानेवाले देव (एनं यावयन्तु) इस शत्रुको दूर करें ॥ १३ ॥

(प्रणुत्तः द्वे॒ष्यः) भगाया हुआ शत्रु (अस॑र्ववीरः) सर्ववीरोंसे रहित होकर (स्वानां मि॒त्राणां परि॒वर्ग्यः) अपने मित्रोंके द्वारा भी त्यागा हुआ (चरतु) विचरे । (उ॒त पृथि॑व्यां वि॒द्युतः अव॑स्यन्ति) और प्रकाश देनेवाली बिजलियां पृथ्वीपर आजाय । (वः उ॒ग्रः दे॒वः) आपका वह प्रतापी देव (स॒पत्नान् प्रमृ॑णत्) शत्रुओंका नाश करे ॥ १४ ॥

भावार्थ—बन्धनसे रहित हुई नौका जैसी महासागरमें जिधर चाहे उधर भटकती है, वैसी मेरे शत्रुओंकी भ्रान्त अवस्था होगई है, जो अब कभी अपनी पूर्व स्थितिमें नहीं आसकते ॥ १२ ॥

सब देव मुझे सहायता करें और मेरे शत्रुओंको भगा दें ॥ १३ ॥

हमारे पराक्रमसे भगाये हुए शत्रु अब चारों ओर भटक रहे हैं, न उनके पास कोई वीर हैं, न उनके पास कोई मित्र हैं, न उनके लिये कोई परिवार रहा है । सब देव मुझे सहायता करें और शत्रु नष्ट हों ॥ १४ ॥

च्युता चेयं बृहत्यच्युता च विद्युद् बिभर्ति स्तनयित्नुंश्च सर्वान् ।
 उद्यन्नादित्यो द्रविणेन तेजसा नीचैः सपत्नान् नुदतां मे सहस्वान् ॥ १५ ॥
 यत् ते काम शर्म त्रिवरूथमुद्भु ब्रह्म वर्म विततमनतिव्याध्यं कृतम् ।
 तेन सपत्नान् परि वृङ्ग्धि ये मम पर्येनान् प्राणः पशवो जीवनं वृणक्तु ॥ १६ ॥
 येन देवा असुरान् प्राणुदन्त येनेन्द्रो दस्यूनधमं तमो निनाय ।
 तेन त्वं काम मम ये सपत्नास्तानस्माल्लोकात् प्र णुदस्व दूरम् ॥ १७ ॥

अर्थ—(च्युता च अच्युता च इयं बृहती विद्युत्) बिचलित अथवा अबिचलित हुई यह बड़ी विद्युत् (सर्वान् स्तनयित्नुन् च बिभर्ति) सब गर्जना करनेवालों का धारण करती है । (द्रविणेन तेजसा उद्यन् सहस्वान् आदित्यः) धन और तेजके साथ उदयको प्राप्त होनेवाला बलवान् सूर्य (मे सपत्नान् नीचैः नुदतां) मेरे शत्रुओंको नीचे की ओर भगावे ॥ १५ ॥

हे काम ! (यत् ते त्रिवरूथं उद्भु) जो तेरा तीनों ओरसे रक्षक उत्कृष्ट शक्तिवाला (विततं ब्रह्म वर्म) फैला हुआ ज्ञान का कवच (अनतिव्याध्यं कृतं) शस्त्रोंसे वेध न होने योग्य बनाया और (शर्म) सुखदायक है (तेन) उससे (ये मम) जो मेरे शत्रु हैं उन (सपत्नान् परिवृङ्ग्धि) शत्रुओंको दूर कर । (एनान् प्राणः पशवः जीवनं परि वृणक्तु) इनको प्राण, पशु और आयु छोड़ देवे ॥ १६ ॥

(येन देवाः असुरान् प्राणुदन्त) जिससे देव असुरोंको दूर करते रहे, (येन दस्यून् इन्द्रः अधमं तमः निनाय) जिससे शत्रुओंको इन्द्रने हीन अन्धकार में डाल दिया, हे काम ! (तेन) उससे (मम ये सपत्नाः) मेरे जो शत्रु हैं (तान् सपत्नान्) उन शत्रुओंको (त्वं अस्मात् लोकात्) तू इस लोकसे (दूरं प्रणुदस्व) दूर भगा ॥ १७ ॥

भावार्थ— यह विद्युत् और यह सूर्य अर्थात् इनमें जो देव है वह मेरे शत्रुओंको दूर भगा देवे ॥ १५ ॥

इस कामका बड़ा संरक्षक ज्ञानमय कवच है वह सब सुखोंका देनेवाला है । इसको मैं पहनता हूँ, जिससे शत्रुके शस्त्र मेरा वेध नहीं करेंगे, और सब शत्रु प्राण, पशु और आयुसे रहित हो जायेंगे ॥ १६ ॥

जिस शक्तिसे देवोंने असुरोंका और इन्द्रने दस्युओंका पराभव किया

यथा देवा असुरान् प्राणुदन्त यथेन्द्रो दस्यूनधमं तमो बबाधे ।

तथा त्वं काम मम ये सपत्नास्तानस्माच्छोकात् प्र णुदस्व दूरम् ॥ १८ ॥

कामो जज्ञे प्रथमो नैनं देवा आपुः पितरो न मर्त्याः ।

ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि ॥ १९ ॥

यावती यावापृथिवी वरिष्णा यावदापः सिष्यदुर्यावदग्निः ।

ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि ॥ २० ॥ (४)

अर्थ— (यथा देवाः असुरान् प्राणुदन्त) जिस रीतिसे देवोंने असुरोंको हटाया, (यथा इन्द्रः दस्यून् अधमं तमः बबाधे) जिस प्रकार इन्द्रने शत्रुओंको हीन अन्धकारमें डाला, (तथा त्वं काम) उस प्रकार हे काम! तू (मम ये सपत्नाः) मेरे जो शत्रु हैं (तान् अस्मात् लांकात् दूरं प्रणुदस्व) उनको इस लोकसे दूर हटा दे ॥ १८ ॥

(कामः प्रथमः जज्ञे) काम सबसे पहिले उत्पन्न हुआ (देवाः एनं न आपुः) देवोंने इसको प्राप्त नहीं किया और (पितरः मर्त्याः न) पितरोंको और मर्त्योंको भी यह प्राप्त नहीं हुआ । (ततः त्वं ज्यायान् असि) अतः तू श्रेष्ठ है और (विश्वहा महान्) सदा महान् है । हे काम ! (तस्मै ते इत् नमः कृणोमि) उस तुझे मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १९ ॥

(यावती वरिष्णा यावापृथिवी) जितनी विस्तारसे यौ और पृथिवी बड़ी है, (यावत् आपः सिष्यदुः) जहाँतक जल फैला है, (यावत् अग्निः) जबतक अग्नि फैला है, (ततः त्वं ज्यायान् असि) उससे भी तू बड़ा है और (विश्वहा महान्) सदा बड़ा है । हे काम (तस्मै ते०) उस तुझे मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २० ॥

उस शक्तिसे मैं अपने शत्रुओंको इस स्थानसे भगा दूंगा ॥ १७—१८ ॥

काम सबसे प्रथम उत्पन्न हुआ । देवों, पितरों और मर्त्योंका प्रकट होना उसके पश्चात् है । अतः काम सबसे श्रेष्ठ है । इसलिये मैं उसको नमन करता हूँ ॥ १९ ॥

यावतीर्दिशः प्रदिशो विषूचीर्यावतीराशा अभिचक्षणा दिवः ।
 ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महान्स्तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि ॥२१॥
 यावतीर्भृङ्गा जत्वः कुरुरवो यावतीर्वघा वृक्षसर्प्यो बभ्रुवुः ।
 ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महान्स्तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि ॥२२॥
 ज्यायान् निमिषतोऽसि तिष्ठतो ज्यायान्समुद्रादसि काम मन्यो ।
 ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महान्स्तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि ॥२३॥
 न वै वातश्चन काममाप्नोति नाग्निः सूर्यो नोत चन्द्रमाः ।
 ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महान्स्तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि ॥ २४ ॥

अर्थ—(यावतीः दिशः प्रदिशः विषूचीः) जहां तक दिशाएं और उपदिशाएं फैली हैं और (यावतीः दिवः अभिचक्षणाः आशाः) जहां तक गुलोकका प्रकाश फैलानेवाली दिशाएं हैं, (ततः त्वं०) उनसे भी तू बड़ा और सदा महान् है, हे काम मैं उस तुझे नमस्कार करता हूं ॥ २१ ॥

(यावतीः भृङ्गाः जत्वः) जहां तक भौरे, मखियां, (यावतीः कुरुरवः वघाः) जहां तक नीलें और काटनेवाले डेम्बू और (वृक्षसर्प्यः बभ्रुवुः) वृक्षपर चढ़नेवाले सर्प होते हैं (ततः त्वं०) उनसे तू बड़ा और सदा श्रेष्ठ है, हे काम ! उस तुझे मैं नमस्कार करता हूं ॥ २२ ॥

हे काम ! हे (मन्यो) उत्साह ! तू (निमिषतः ज्यायान्) फलक मारने वालोंसे बड़ा, (तिष्ठतः ज्यायान्) ठहरनेवालोंसे भी बड़ा, (समुद्रात् असि) समुद्रसे भी बड़ा है । (ततः त्वं०) उनसे तू बड़ा और सदा श्रेष्ठ है, हे काम ! उस तुझे मैं नमस्कार करता हूं ॥ २३ ॥

(वातः चन कामं न आप्नोति) वायु कामको नहीं प्राप्त करता, (न अग्निः, सूर्यः, न उत चन्द्रमाः) अग्नि, सूर्य और चन्द्र इनमेंसे कोई भी उसको प्राप्त नहीं कर सकता । (ततः त्वं०) उनसे तू बड़ा और सदा श्रेष्ठ है, हे काम ! उस तुझे मैं नमस्कार करता हूं ॥ २४ ॥

भावार्थ— जितना पृथ्वीका विस्तार है, जहां तक जल फैले हैं, जहां तक प्रकाशकी व्याप्ति है, दिशाएं जहां तक फैली हैं, पशुपक्षी जहां तक दौड़ते हैं उन सबकी व्याप्तिसे कामकी व्यापकता बढ़कर है ॥ २०-२२ ॥

आंखें मूढ़नेवाले प्राणियोंसे कामकी शक्ति बढ़कर है, स्थिरपदार्थोंसे

यास्तै शिवास्तन्वः काम भद्रा याभिः सत्यं भवति यद् वृणीषे ।
ताभिष्ट्वमस्माँ अभिसंविशस्वान्यत्र पापीरपं वेशया धियः ॥ २५ ॥ (५)
॥ इति प्रथमोऽनुवाकः ॥

अर्थ—हे काम (याः ते शिवाः भद्राः तन्वः) जो तेरी कल्याणकारी और हितकर शरीरें हैं, (याभिः) जिनसे तू (यत् सत्यं भवति) जो सच्चा होता है उसका (वृणीषे) स्वीकार करता है । (ताभिः त्वं अस्मान् अभि सं विशस्व) उनसे तू हम सबमें प्रविष्ट हो और (पापीः धियः) पाप बुद्धियोंको (अन्यत्र अपवेशय) दूर करो ॥ २५ ॥

भी बढ़कर है, पृथ्वी, आप, तेज, वायु और आकाश से भी बढ़ी है । सूर्य चन्द्रसे भी बढ़कर है अर्थात् यह काम सबसे बढ़कर है ॥ २३-२४ ॥

अतः हे काम ! शुभ, भद्र और सत्य जो है वह मेरे पास प्राप्त हो और पापबुद्धि मुझसे दूर चली जाय ॥ २५ ॥

संकल्पशक्ति ।

इस सूक्तमें ' काम ' शब्द है वह स्त्रीसंबंधके विषयका वाचक नहीं है, परंतु संकल्प-शक्तिका वाचक है । यह काम सबसे प्रथम उत्पन्न हुआ है ऐसा इस सूक्तके निम्न-लिखित मंत्रमें कहा है—

कामो जज्ञे प्रथमः । (मं० १९)

“ काम सबसे पहिले प्रकट हुआ । ” यही बात वेदमें अन्यत्र कही है—

कामस्तप्ते समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् ।

ऋ० १० । १२९ । ४

“ आरंभमें मनका वीर्य बढ़ानेवाला काम सबसे प्रथम उत्पन्न हुआ । इस प्रकार कामकी उत्पत्ति सबसे प्रथम कही है । उपनिषदोंमें भी देखिये—

कामः संकल्पो विचिकित्सा श्रद्धाऽश्रद्धा धृतिरधृति

ह्रीर्धाभीरित्येतत्सर्वं मन एव ॥ बृ० उ० १ । ५ । ३

काम एव यस्यायतनं हृदयं लोको मनो ज्योतिः०

य एवायं काममयः पुरुषः० ॥ बृ० उ० ३ । ९ । ११

कामोऽकार्षीन्नाहं करोमि, कामः करोति, कामः-कर्ता,
कामः कारयिता ॥ महामारा० उ० १८ । २

“ काम, संकल्प, विचिकित्सा, श्रद्धा, अश्रद्धा, धृति, अधृति, -ही (लजा,) धीः (बुद्धिः), भीः (भय) यह सब मनमें रहता है । इन सबमें जो पहली लहरी है वह काम की लहरी है । काम सबका आधारस्थान है, उसका तेज मन है और हृदय लोक है । यह मनुष्य काममय है अर्थात् जिस प्रकारके इसके काम होते हैं वैसा यह बनता है । काम ही सबका कर्ता है, मैं कर्ता नहीं हूँ । कामके द्वारा यह सब चलाया जाता है । ” इस रीतिसे उपनिषदोंमें कामके विषयमें कहा है । यहाँ कामका अर्थ ‘संकल्प’ है यह बात स्पष्ट होगई है । यह संकल्प अच्छा हुआ तो मनुष्यका भला होता है और बुरा हुआ तो बुरा होता है । यह बुरा हो वा भला हो, इसमें बड़ी मारी शक्ति रहती है । मानो संपूर्ण मनुष्य इसीकी प्रेरणासे प्रेरित होकर बुरा भला कर्म कर रहे हैं । यह मानवोंका व्यवहार देखनेसे कहना पड़ता है कि इस काम-संकल्प-की शक्ति बहुत ही बड़ी है, इसी शक्तिका वर्णन इस सूक्तमें किया है ।

जगत्के प्रारंभमें आत्माके अन्दर ‘ काम किंवा संकल्प ’ उत्पन्न हुआ, इसका दर्शक उपनिषद्वचन यह है— ‘ सोऽकामयत ’ (बृ० उ० १ । २ । ४, तै० उ० २ । ५ । १) उस आत्माने कामना की और उसकी कामना सिद्ध हुई जिससे यह सब जगत् निर्माण हुआ है । परमात्माके संकल्प शुद्ध थे अतः वे सिद्ध होगये । जिसके संकल्प शुद्ध होते हैं उसके सब संकल्प सिद्ध होते हैं, अतः कहा है—

यं यं कामं कामयते, सोऽस्य संकल्पादेव ससुत्तिष्ठति ।

छां० उ० ८ । २ । १०

“ जो कामना करता है वह संकल्प होते ही सिद्ध हो जाती है । ” यह संकल्पका बल है । इस संपूर्ण सृष्टीकी उत्पत्तिभी इसी प्रकार होगई है । मनुष्यकी कामनामें भी यह बल अल्प अंशसे है । इसीका वर्णन इस सूक्तमें किया है । यदि इस काममें इतनी प्रचण्ड शक्ति है तो अवश्यहि उसको सुशिक्षासे युक्त करना चाहिये, अतः कहा है—

सपत्नह्नं ऋषभं कामं हविषा शिक्षामि । (मं० १)

“ शत्रुका नाश करनेवाला बलवान् काम है, उसको यज्ञसे शिक्षित करता हूँ । ” हम कामनामें— इस संकल्पमें—बड़ी शक्ति है, परंतु वह यदि अशिक्षित रही, तो हानि करेगी, अतः उसको शिक्षा देकर उत्तम नियम व्यवस्थामें चलनेवाली करनी चाहिये ।

अतः शिक्षा की आवश्यकता है । यह शिक्षा यज्ञसे-हविसे अर्थात् आत्मसमर्पणसे-होती है । हवि जैसा जगत् की मलाई के लिये स्वयं जल जाता है, पूर्णतया समर्पित होता है वैसा मनुष्यको आत्मसमर्पण करना चाहिये । आत्मसमर्पण की शिक्षासे अपने संकल्प को शिक्षित करना चाहिये । इस रीतिसे सुशिक्षित हुआ यह काम (महता वीर्येण) बड़े वीर्य-पराक्रमसे युक्त होता है और मनुष्य इसके प्रभावसे अपने सब शत्रु दूर कर सकता है ।

यन्मे मनसो न प्रियं न चक्षुषः यन्मे नाभिनन्दति । (मं० २)

“जो मनको और आंखको प्रिय नहीं होता है और जो अन्य इंद्रियोंको भी अप्रिय होता है, जो अपने आत्माको सन्तोष नहीं देता । ” उसको दूर करना इसी सुशिक्षित कामसे होता है । इसीसे (अहं उत् मिदं) अपने ऊपरका दबाव हटाकर, उसका मेदन करके अपनी उच्च अवस्था की जा सकती है । यह सब मनुष्य के प्रयत्नसे साध्य होनेवाली बात है । परंतु यह तब होगा जब कि मनुष्यकी कामना सुशिक्षायुक्त होगी, अन्यथा वही प्रचंड शक्ति इसका नाश करेगी ।

(कामः उग्रः ईशानः) काम बड़ा उग्र अर्थात् प्रतापी है और वह ईश्वर है अर्थात् मनुष्यकी मवितव्यताका वह स्वामी है । क्यों कि मनुष्यका भूत, भविष्य, वर्तमान यही घडता है । जैसा यह बनाता है वैसी मनुष्यकी स्थिति बनती है । अतः इसका महत्त्व बड़ा भारी है । इसका ऐसा विलक्षण प्रभाव है इसीलिये इसकी सहायतासे मनुष्य निःसन्देह उन्नति प्राप्त कर सकता है—

दुरितं अप्रजस्तां अ-स्व-गतां अवर्ति मुञ्च । (मं० ३)

“पाप, संतान न होना, निर्धनता और विपत्ति इनको दूर कर सकता है । ” मनुष्यकी भी यही इच्छा हुआ करती है । कोई मनुष्य नहीं चाहता कि मुझे पाप लगे, संतान न हो, दारिद्र्य मेरे पास आजाय और मैं विपत्तीमें सडता रहूं, ऐसा कोईभी नहीं चाहता । परंतु ये संपूर्ण विपत्तियां मनुष्यको भोगनी पडती हैं, इसका कारण यह है कि मनुष्य की कामना अशिक्षित होती है, वह विपरीत संकल्प करती है और उसका फल विपत्ति-रूप उसे भोगना ही पडता है । इस कामकी पुत्री वाणीरूपी घेनु है, इसका वर्णन इस प्रकार है—

ते दुहिता घेनुः यां कवयो वाचं आहुः । (मं० ५)

“ कामकी पुत्री एक घेनु है जिसको कवि लोग वाणी कहते हैं । ” यह वाणी भी

काम के समान हि बड़ी प्रभावशालिनी है । यदि यह वाणी उत्तम रीतिसे प्रयुक्त की गई तो शत्रु मित्र बनते हैं और यदि बुरी तरहसे इसका प्रयोग किया गया तो मित्र शत्रु होते हैं । इसलिये काम को सुशिक्षित करनेके समय वाणीको भी शिक्षित करना अत्यन्त आवश्यक है, यह बात अनुभवसिद्ध ही है ।

उग्रः वाजी कामः मम अध्यक्षः मम असपत्नं कृणोतु । (मं० ७)

“ प्रतापी, बलवान् काम मेरा अध्यक्ष है वह मुझे शत्रुरहित करे । ” अर्थात् यह काम किंवा संकल्प हर एक मनुष्यका अधिष्ठाता है । अधिष्ठाता वह होता है कि जो सतत साथ रहता हुआ निरीक्षण करता है । यही कामका कार्य है । यह मनुष्योंके चालचलन का अधिष्ठाता होकर निरीक्षण करता है । यदि अधिष्ठाता शिक्षित हुआ, तो अच्छी सहायता होता है और यदि बुरा रहा तो हीन प्रवृत्ती करता है, बुरे मार्गसे ले जाता है, जिसका परिणाम खराब होता है । इसलिये प्रार्थना की है कि—

विश्वे देवा मम नाथं भवन्तु । सर्वे देवा मम हवमायन्तु ॥ (मं० ७)

“ सब देव मेरे रक्षक बनें, सब देव मेरे यज्ञका स्वीकार करें । ” इस प्रकार देवोंके द्वारा मेरी सहायता होती रही, तो निःसंदेह मेरी कामना शुद्ध होगी और मेरी उन्नति हो जायगी । अतः यह मेरी प्रार्थना सब देव सुनें और कृपा करके मेरी रक्षा करें । ये देव “ काम-ज्येष्ठाः ” अर्थात् इनमें काम हि श्रेष्ठ है, सब देवोंमें यह काम देव सबसे श्रेष्ठ है, क्योंकि जगत् रचना करनेमें सब देव सहायता करतेही हैं, परंतु परमात्माका काम-संकल्प-जबतक जाग नहीं उठता, तबतक कोई अन्य देव रचनाके कार्यमें अपने आपको नहीं लगा सकते । यह कामका महत्त्व है । मनुष्यके व्यवहारमें भी देखिये सबसे पहिले संकल्प होता है, तत्पश्चात् इंद्रियव्यापार होजाते हैं । इसीलिये सर्वत्र काम-का-संकल्पका-महत्त्व वर्णन किया है । जीवात्माका परमात्मामें तथा कामका अन्य देवोंके साथ संबंध होता है । यह देखनेसेहि सब देवोंमें काम श्रेष्ठ कैसा है यह जान सकते हैं—

परमात्मा	जीवात्मा
काम, संकल्प [अधिष्ठाता]	काम, संकल्प
महत्त्व	बुद्धी
चन्द्रमाः	मन
इन्द्र	चित्त
सूर्य	नेत्र
वायु	प्राण

अग्नि
जल

वाणी
वीर्य

इस रीतिसे सब देवोंका अधिष्ठाता काम है । शरीरमें जो देव हैं वे विश्वके देवोंके सूक्ष्म अंशही हैं, अतः दोनों स्थानोंमें देवोंका संबंध एक जैसाही है । जैसा संकल्प होता है वैसे अन्यान्य देव शरीरमें तथा जगत्में अनुकूलतासे कार्य करते हैं । अपने शत्रु नाश पावें और मेरा विजय जगत्में होवे, यही सबकी भावना सर्वसाधारण होती है अतः कहा है—

अवधीत्कामो मम ये सपत्नाः । उरुं लोकमकरन्मह्यमेधतुम् ।

मह्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रो, मह्यं षडुर्वार्धृतमा वहन्तु ॥ (मं० ११)

“ संकल्पहि शत्रुओंका नाश करता है, संकल्प हि वृद्धी करनेके लिये विस्तृत कार्य-क्षेत्र देता है । संकल्पसे हि चारों दिशाएं मनुष्यके सामने नम्र होती हैं और संकल्पसे हि सब भूप्रदेशोंसे घृतादि अन्नभोग प्राप्त होते हैं । ” यदि किसीने संकल्पहि इस प्रकार नहीं किया तो उसका क्या होगा ? पाठक विचार की दृष्टीसे जगत्में देखें, तो उनको स्पष्ट दिखाई देगा कि इस जगत्के व्यवहारमें सर्वत्र ‘ काम ’ की ही प्रेरणा हो रही है, हरएक कर्मके पीछे काम होता है, यदि किसी स्थानपर काम न रहा तो कोई कार्य बनता नहीं । अतः इस मंत्रमें कहा है कि जो भी कुछ इस जगत्में बन रहा है कामकी प्रेरणासे हि बन रहा है ।

पूर्वोक्त कोष्टकमें दर्शाया है कि अग्नि, इन्द्र, सोम अथवा अन्य देव ये सब कामकी प्रेरणासे कार्य कर रहे हैं, उनके प्रतिनिधि वाणी, मन और चित्त ये भी संकल्पसेहि अपने अपने कार्यमें प्रेरित हो रहे हैं । इसी रीतिसे (अग्निः यवः) अग्नि शत्रु दूर करता है, अन्य देवभी शत्रुओंको दूर करते हैं, यह सब पूर्वोक्त रीतिसेहि समझना चाहिये ।

काम का कवच ।

यह काम एक ऐसा कवच पहनाता है, कि जिससे शत्रुके आघात अपने ऊपर लगतेहि नहीं, देखिये—

यत्ते काम शर्म त्रिवरूथमुद्भु ब्रह्म धर्म विततमनतिव्याध्यं कृतम् ।

(मं० १६)

“ यह कामका एक विलक्षण कवच है जो तीनों केन्द्रोंमें उत्तम रक्षा करता है, इससे

(अन्-अतिव्याधि) शत्रुके शस्त्रोंका प्रहार अपने ऊपर नहीं लगता, यह (ब्रह्म वर्म) ज्ञानका कवच है । इस ब्रह्मवर्मका वर्णन इससे पूर्व इसी काण्डमें द्वितीय सूक्तके दशम मंत्रमें आया है । वहाँ की व्याख्यामें इसका वर्णन पाठक अवश्य देखें ।

यह काम (प्रथमः जज्ञे) सबसे पूर्व उत्पन्न हुआ, इसके बाद अन्य देव जाग उठे हैं अतः अन्य देव इसको प्राप्त कर नहीं सकते । जो हमारे पूर्व दो हजार वर्ष हुए होंगे, उनको हम कदापि प्राप्त नहीं कर सकते । इसी प्रकार काम की उत्पत्ति पहिले और अन्य देवोंकी बाद होनेसे अन्य देव कामको प्राप्त नहीं कर सकते यह बिलकुल ठीक है । अतः कहा है--

कामो जज्ञे प्रथमो नैनं देवा आपुः पितरो न मर्त्याः ।

ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महान्० । (मं० १९)

“ काम सबसे पहिले उत्पन्न हुआ अतः इसको देव प्राप्त नहीं कर सकते और पितर अबवा मर्त्यभी नहीं प्राप्त कर सकते, क्योंकि पितर और मर्त्य तो देवोंके पश्चात् उत्पन्न हुए हैं । इस कारण यह काम सबसे उच्च और समर्थ है, इसकी श्रेष्ठता सदा सर्वदा स्थिर रहनेवाली है । अतः इसका सामर्थ्य सर्वतोपरि है ।

आगे मंत्र २१ से २४ तक के चार मंत्रोंमें काम सबसे श्रेष्ठ है यही बात कही है । संपूर्ण पदार्थोंसे, स्थिरचरोंसे, अर्थात् सबसे यह श्रेष्ठ है । पंचमहाभूतोंसे, सब प्राणियोंसे, सूर्य और चन्द्रमासे, तथा सब अन्योसे काम श्रेष्ठ और समर्थ है । अतः अन्तिम मंत्रमें प्रार्थना यह है कि—

यास्ते शिवास्तन्वः काम भद्रा याभिः सस्यं भवति यद्वृणीषे ।

तामिद्वमस्माँ अभि संविशस्वान्यत्र पापीरप वेद्याया भियः ॥ (मं० २५)

“ कामके अंदर जो शुभ और कल्याणकारी भाग है, जिससे सब सत्य की सिद्धी होती है, वह शुभ भाग मेरे अंदर घुसजाय और जो पापका भाग है, वह दूर हो । ” संकल्प एक बड़ीमारी शक्ति है, उससे पापभी होमा और पुण्यमी । इस कारण मनुष्य को उचित है कि वह सदा शिवसंकल्प करे और पाप संकल्पसे दूर रहे । इस रीतिसं मनुष्य अपनी कामना शुभ कराके सदा उन्नतिके पथसे ऊपर जा सकता है ॥



गृहनिर्माण ।

(३)

(ऋषिः-भृगुगिराः । देवता-शाला)

उपमितां प्रतिमितामथो परिमितामुत ।

शालाया विश्ववाराया नद्धानि वि चृतामसि ॥ १ ॥

यत् ते नद्वं विश्ववारे पाशो ग्रन्थिश्च यः कृतः ।

बृहस्पतिरिवाहं बलं वाचा वि संसयामि तत् ॥ २ ॥

अर्थ- (विश्ववारायाः शालायाः उपमितां) सब भयके निवारक घरके स्तंभों, (प्रतिमितां) स्तंभोंके जोड़ों (अथो उत परिमितां) और उत्तम बंधनोंके (नद्धानि वि चृतामसि) ग्रंथियोंको हम बांधते हैं ॥ १ ॥

हे (विश्व-वारे) सब दुःखोंका निवारण करनेवाले घर ! (यत् ते नद्वं) जो तेरा बन्धन है, (यः पाशः ग्रन्थिः च कृतः) जो पाश और ग्रंथि पहिले किये हैं, (बृहस्पतिः वाचा बलं इव) बृहस्पति अपनी वाणीके द्वारा जैसा शत्रुसैन्यका नाश करता है, उस प्रकार (तत् विसंसयामि) उनको मैं खोलता हूँ ॥ २ ॥

भावार्थ— बहुत कष्टोंको दूर करनेके लिये घर बनाया जाता है । उस घरके स्तंभों, सहारोंकी लकड़ियों, डंडियोंको तथा छप्परकी लकड़ियोंको हम उत्तम रीतिसे सख्त जोड़ देते हैं ॥ १ ॥

जो बंधन और ग्रंथियां तथा जो और पाश पहिले बांधे थे, उनको मैं अब ढीला करता हूँ । जिस प्रकार ज्ञानी अपनी वाणीसे शत्रुसैन्यको ढीला बना देता है ॥ २ ॥

आ ययाम सं बबर्ह ग्रन्थीश्चकार ते दृढान् ।
 परूषि विद्वांस्तुवेन्द्रेण वि चृतामसि ॥ ३ ॥
 वंशानां ते नहनानां प्राणाहस्य तृणस्य च ।
 पक्षानां विश्ववारे ते नद्धानि वि चृतामसि ॥ ४ ॥
 संदंशानां पलदानां परिष्वज्यस्य च ।
 इदं मानस्य पत्न्या नद्धानि वि चृतामसि ॥ ५ ॥

अर्थ— (आययाम) इकट्ठा किया, (सं बबर्ह) जोड़ दिया और (ते दृढान् ग्रन्थीन् चकार) तेरे गाँठोंको सुदृढ़ कर दिया है । (परूषि विद्वान् शस्ता इव) जोड़ोंको जान कर काटनेवालेके समान (इन्द्रेण विचृतामसि) इन्द्रकी सहायतासे हम बांध देते हैं ॥ ३ ॥

हे (विश्व-वारे) सब कष्टोंका निवारण करनेवाले घर ! (ते वंशानां नहनानां) तेरे बांसों और बंधनों तथा (प्राणाहस्य तृणस्य च) जोड़ों और घासका तथा (ते पक्षानां नद्धानि) तेरे दोनों ओरके बंधनोंको (वि चृतामसि) मैं बांधता हूँ ॥ ४ ॥

(मानस्य पत्न्याः) प्रमाण लेनेवालेके द्वारा पालित हुए घरके (सं-दंशानां पलदानां) कैचियोंके और चटाइयोंके (च परिष्वज्यस्य) तथा विलासस्थानके (इदं नद्धानि विचृतामसि) इस प्रकारके बंधनोंको मैं बांधता हूँ ॥ ५ ॥

भावार्थ— पहिले सब सामान इकट्ठा किया, उसको यथास्थान जोड़ दिया, उनके जोड़ बड़े मजबूत किये । जोड़नेके स्थानोंको यथायोग्य रीतिसे काटनेका ज्ञान जिसको है, उसके समानहि काटा और सबको प्रभुत्वके साथ बांधा है ॥ ३ ॥

घरके बांसों, बंधनों, जोड़ोंके स्थान, घास और दोनों ओरके बंधनोंको योग्य रीतिसे मैं मजबूत बांध देता हूँ ॥ ४ ॥

प्रमाणसे बंधे हुए इस घरके कैचियों, चटाइयों, और आन्तरिक स्थानों-के सब बंधनोंको मैं अच्छी प्रकार बांधता हूँ ॥ ५ ॥

यानि तेन्तः शिष्यान्व्यावेधू रण्यायि कम् ।

प्र ते तानि चृतामसि शिवा मानस्य पत्नी न उद्धिता तन्वे भव ॥ ६ ॥

हविर्धानमग्निशालं पत्नीनां सदनं सदः ।

सदो देवानामसि देवि शाले ॥ ७ ॥

अक्षुमोपशं विततं सहस्राक्षं विषूवति ।

अवनद्रमभिहितं ब्रह्मणा वि चृतामसि ॥ ८ ॥

अर्थ- (यानि ते अन्तः शिष्यानि) जो तेरे अन्दर छीकें (रण्याय कं आवेधुः) रमणीयताके लिये सुखसे बांधे हैं, (ते तानि प्रचृतामसि) तेरेसे उनको हम बांधते हैं । तू (मानस्य पत्नी) प्रमाण लेनेवालेके द्वारा पालित होनेवाली (उद्धिता) ऊपर उठायी हुई (नः तन्वे शिवा भव) हमारे शरीरके लिये कल्याणकारिणी हो ॥ ६ ॥

हे (शाले देवि) गृहरूपी देवते ! (हविर्धानं) हविष्य अन्नका स्थान, (अग्निशालं) अग्निशाला अथवा यज्ञशाला, (पत्नीनां सदनं) स्त्रियोंके रहनेका स्थान, (सदः) रहनेका स्थान, और (देवानां सदः) देवताओंका स्थान (असि) तू है ॥ ७ ॥

(विषूवति ओपशं) आकाश रेषापर आभूषण रूप हुआ (विततं सहस्राक्षं अक्षुं) फैला हुआ हजारों छिट्रोंवाला जाल (अवनद्रं अभिहितं) बंधा और तना हुआ (ब्रह्मणा वि चृतामसि) ज्ञानसे बांधते हैं ॥ ८ ॥

भावार्थ- घरके अन्दर जो छीकें रखी हैं, जिनपर सुख देनेवाले पदार्थ भर रखे हैं, उनको हम उत्तम रीतिसे बांध देते हैं । इस प्रकार बनाई यह उच्च शाला हमारे शरीरोंको सुख देनेवाली हो ॥ ६ ॥

घरके अन्दर धान्यका स्थान, हवनका कमरा, स्त्रियोंका बैठनेका स्थान, अन्य मनुष्योंके लिये बैठने उठनेका स्थान और देवोंके लिये स्थान होवे ॥ ७ ॥

ऊपरके भागमें भूषणके समान दिखाई देनेवाला, हजार सुंदर छिट्रोंवाला फैला हुआ जाल हम उत्तम रीतिसे फैलाकर और तानकर बांधते हैं ॥ ८ ॥

यस्त्वा शाले प्रतिगृह्णाति येन चासि मिता त्वम् ।
 उभौ मानस्य पत्नि तौ जीवतां जरदष्टी ॥ ९ ॥
 अमुत्रैनमा गच्छताद् दृढा नद्धा परिष्कृता ।
 यस्यास्ते विचृतामस्यङ्गमङ्गं परुष्परुः ॥ १० ॥ (६)
 यस्त्वा शाले निमिमाय संजभार वनस्पतीन् ।
 प्रजायै चक्रे त्वा शाले परमेष्ठी प्रजापतिः ॥ ११ ॥
 नमस्तस्मै नमो दात्रे शालापतये च कृष्णः ।
 नमोग्रये प्रचरते पुरुषाय च ते नमः ॥ १२ ॥

अर्थ-हे (मानस्य पत्नि शाले) प्रमाण लेनेवालेके द्वारा पालित घर । (यः त्वा प्रतिगृह्णाति) जो तुझे लेता है, (येन च त्वं मिता असि) जिसने तेरा प्रमाण किया है, (उभौ तौ) दोनों वे (जरदष्टी जीवतां) वृद्धावस्थातक जीवित रहें ॥ ९ ॥

(यस्याः ते) जिस तेरे (अंगं अंगं परुः परुः) प्रत्येक अंग और प्रत्येक जोड़ (विचृतामसि) हमने मजबूत बनाया है, वह तू (अमुत्र दृढा नद्धा परिष्कृता) वहाँ सुदृढ, बंधी हुई और सुसिद्ध होकर (एनं आगच्छतात्) इसके पास आ ॥ १० ॥

हे शाले ! (यः त्वा निमिमाय) जिसने तुझे बनाया, और जिसने (वनस्पतीन् संजभार) वृक्षोंको काटकर जमाया, हे शाले ! (परमेष्ठी प्रजापतिः) परमेष्ठी प्रजापतिने (त्वा प्रजायै चक्रे) तुझे प्रजाके लिये निर्माण किया ॥ ११ ॥

(तस्मै दात्रे नमः) उस काटनेवालेको नमस्कार । (शालापतये नमः कृष्णः) शालाके स्वामीको नमस्कार करते हैं । (नमः प्रचरते अग्नये)

भावार्थ— यह प्रमाणसे बंधा हुआ घर है, जिसने इसका माप लिया और जिसने यह बनाया वे दीर्घकाल तक जीवित रहें ॥ ९ ॥

इस घरका प्रत्येक भाग और हरएक पुर्जा अच्छी प्रकार सुदृढ बनाया है, इस प्रकार सुदृढ बना हुआ यह घर इसके आधीन होवे ॥ १० ॥

प्रजाका पालन करनेकी इच्छा करनेवाले, उस स्थानमें स्थिर रहनेवाले बड़े कारीगरने इस प्रमाणसे बनाया और उस कार्यके लिये अनेक वृक्षोंको काटा है ॥ ११ ॥

गोभ्यो अश्वेभ्यो नमो यच्छालायां विजायते ।

विजावति प्रजावति वि ते पाशांश्चृतामसि ॥ १३ ॥

अग्निमन्तश्छादयसि पुरुषान् पशुभिः सह ।

विजावति प्रजावति वि ते पाशांश्चृतामसि ॥ १४ ॥

अन्तरा यां च पृथिवीं च यद् व्यचस्तेन शालां प्रति गृह्णामि त इमाम् ।

यदन्तरिक्षं रजसो विमानं तद् कृण्वेहमुदरं शेवधिभ्यः ॥

तेन शालां प्रति गृह्णामि तस्मै ॥ १५ ॥

चलनेवाले अग्निके लिये नमस्कार और (ते पुरुषाय च नमः) तेरे पुरुषके लिये नमस्कार है ॥ १३ ॥

(यत् शालायां विजायते) जो शालामें होता है उस (गोभ्यः अश्वेभ्यः नमः) गौओं और घोड़ोंके लिये नमस्कार । हे (विजावति प्रजावति) उत्पादक और संतानयुक्त घर ! (ते पाशांश्चृतामसि) तेरे पाशोंको हम बांधते हैं ॥ १३ ॥

(पशुभिः सह पुरुषान्) पशुओंके साथ मनुष्योंको और (अग्नि) अग्निको (अन्तः छादयसि) अन्दर गुप्त रखती है । हे (विजावति प्रजावति) उत्पादक और संतानयुक्त घर ! तेरे पाशोंको हम बांधते हैं ॥ १४ ॥

(यां च पृथिवीं च अन्तरा) शु और पृथ्वीके मध्यमें (यत् व्यचः) जो विस्तृत अवकाश है, (तेन ते इमां शालां प्रति गृह्णामि) उससे तेरे इस घरको मैं स्वीकारता हूं । (यत् अन्तरिक्षं रजसः विमानं) जो अन्तरिक्ष-लोकका बीचमें परिमाण है, (तद् अहं शेवधिभ्यः उदरं कृण्वे) वह मैं स्वजानोंके लिये उदर जैसा स्थान करता हूं । (तेन तस्मै शालां प्रति गृह्णामि) उससे उसके लिये मैं इस घरका स्वीकार करता हूं ॥ १५ ॥

भावार्थ— वृक्षोंको काटनेवाले, घरका रक्षण करनेवाले, अग्निको अंदर रखनेवाले तथा अन्य मनुष्योंके लिये मैं नमस्कार करता हूं ॥ १३ ॥

घरमें उत्पन्न होनेवाले सब घोड़े और गौओंके लिये मैं नमस्कार करता हूं । इस घरको सुहृद बनाता हूं ॥ १३ ॥

इस घरके अन्दर मनुष्य, पशु और अग्नि रहते हैं अतः इस संतान-युक्त और उपजाऊ घरके बंधनोंको मैं सुहृद करता हूं ॥ १४ ॥

ऊर्जस्वती पर्यस्वती पृथिव्यां निमिता मिता ।

विश्वान्नं विश्रती शाले मा हिंसीः प्रतिगृह्णतः ॥ १६ ॥

तृणैरावृता पलदान् वसाना राश्रीव शाला जगतो निवेशनी ।

मिता पृथिव्यां तिष्ठसि हस्तिनीव पद्मती ॥ १७ ॥

इदस्य ते वि चृताम्यपिनद्धमपोर्णुवन् ।

वरुणेन समुब्जितां मित्रः प्रातर्व्युञ्जतु ॥ १८ ॥

अर्थ-हे शाले ! (ऊर्जस्वती पर्यस्वती) तू अन्न युक्त और रसपानयुक्त (पृथिव्या निमिता मितां) पृथ्वीपर माप लेकर निर्माण की है । तू (विश्वान्नं विश्रती) सब प्रकारके अन्नका धारण करनेवाली (प्रतिगृह्णतः मा हिंसीः) लेनेवालेका नाश न कर ॥ १६ ॥

(तृणैः आवृता) घाससे आच्छादित, (पलदान् वसाना) चट्टाईयोंसे ढंकी (मिता शाला) माप ली हुई शाला (राश्री इव) राश्रीके समान (जगतः निवेशनी) जगत्को आश्रय देनेवाली (पद्मती हस्तिनी इव) उत्तम पांखवाली हाथिनके समान (पद्मती पृथिव्यां तिष्ठसि) उत्तम स्तंभोंवाली होकर पृथ्वीपर तू ठहरती है ॥ १७ ॥

(ते इदस्य अपिनद्धं) तेरी चट्टाईसे बंधे हुएको (अपजर्णुवन्) आच्छादित करता हुआ (विचृतामि) मैं बांधता हूं । (वरुणेन समुब्जितां) वरुणेन जलसे सीधी की हुईको (मित्रः प्रातः व्युञ्जतु) सूर्य सबेरे सीधी बना देवे ॥

भावार्थ-पृथ्वी और बुलोकमें जो अन्तर है उसमें यह घर निर्माण हुआ है । इसके मध्यभागमें मैं धनसंग्रह करनेका स्थान करता हूं । इस स्वजानेके स्थानके साथ जो घर होगा वही मैं लेता हूं ॥ १५ ॥

घरमें सब प्रकारका अन्न, रसपानका साधन, जल आदि सदा उपस्थित हो । घर प्रमाणसे बनाया जावे । सब प्रकारका अन्न उसमें सिद्ध हो । यह घर कभी किसीका नाश नहीं कर सकता ॥ १६ ॥

इस घरपर घासका छप्पर रखा है, चारों ओर चट्टाईयोंका वेष्टन है, सब स्थान प्रमाणसे रक्खे हैं, इस प्रकारका यह घर सुदृढ़ स्तंभोंपर बैसा सुरक्षित रहता है, जिस प्रकार हाथिन अपने चार पावोंपर सुरक्षित रहती है ॥ १७ ॥

ब्रह्मणा शालां निर्मितां कविभिर्निर्मितां मिताम् ।

इन्द्राग्नी रक्षतां शालाममृतौ सौम्यं सदः ॥ १९ ॥

कुलायेधि कुलायं कोशे कोशः समुब्जितः ।

तत्र मर्तो विजायते यस्माद् विश्वं प्रजायते ॥ २० ॥ (७)

या द्विपक्षा चतुष्पक्षा षट्पक्षा या निमीयते ।

अष्टापक्षां दशपक्षां शालां मानस्य पत्नीमग्निर्गर्भं इवा शये ॥ २१ ॥

अर्थ—(ब्रह्मणा निर्मितां शालां) ज्ञानीने निर्माण किई हुई शालाकी और (कविभिः मितां निर्मितां) कवियोंने प्रमाणसे रची हुई (शालां) शालाकी (अमृतौ इन्द्राग्नी रक्षतां) अमर इन्द्र और अग्नि रक्षा करें । यह (सौम्यं सदः) सोम-वनस्पतियों-का घर है ॥ १९ ॥

(कुलाये अधि कुलायं) घोंसलेपर घोंसला और (कोशे कोशः समुब्जितः) कोशपर कोश सीधा रखा है । (तत्र मर्तः विजायते) वहाँ मर्त्य उत्पन्न होता है । (यस्मात् विश्वं प्रजायते) जिससे सब उत्पन्न होता है ॥ २० ॥

(या द्विपक्षा) जो दो पक्षवाली (या चतुष्पक्षा षट्पक्षा निमीयते) और जो चार तथा छः पक्षोंवाली बनायी जाती है, (अष्टापक्षां दशपक्षां) आठ पक्षों तथा दशपक्षोंवाली (मानस्य पत्नीं शालां) प्रमाणसे मापनेवाले-द्वारा पालित शालाका (गर्भः अग्निः इव) गृहस्थानमें स्थित अग्निके समान मैं (आशये) आश्रय लेता हूँ ॥ २१ ॥

भावार्थ— यह स्थान पहिले चटाईसे आच्छादित था, उसीको मैं सुदृढ बनाता हूँ । रात्रीके समय इस घरको चन्द्र और दिनके समय सूर्य सरलता का मार्ग दिखाते हैं ॥ १८ ॥

ज्ञानी और कवियोंने इस घरकी रचना प्रमाणसे की है । इसकी रक्षा इन्द्र और अग्नि करें । यह घर शान्ति देनेवाला हो ॥ १९ ॥

घोंसलेपर घोंसला अथवा कोशपर कोश रखनेके समान यहाँ पहिले मजलेपर दूसरा मजला रखा है । इसमें मनुष्यका जन्म होता है, इसीसे सबकी उत्पत्ति होती है ॥ २० ॥

यह घर दो, चार, छः, आठ या दस पक्षवाला होता है, जैसा पेटमें गर्भ सुरक्षित रहता है उसी प्रकार मैं इसके आश्रयमें रहता हुआ सुरक्षित रहता हूँ ॥ २१ ॥

प्रतीचीं त्वा प्रतीचीनः शाले प्रैम्यहिंसतीम् ।
 अग्निर्ह्यन्तरापश्चर्तस्य प्रथमा द्वाः ॥ २२ ॥
 इमा आपः प्र भैराम्ययक्ष्मा यक्ष्मनाशनीः ।
 गृहानुप प्र सीदाम्यमृतेन सहाग्निना ॥ २३ ॥
 मा नः पाशं प्रति मुचो गुरुभारो लघुर्भेव ।
 वधूर्भिव त्वा शाले यत्रकामं भरामसि ॥ २४ ॥

अर्थ- हे शाले ! (प्रतीचीनः) पश्चिमकी ओर मुख करनेवाला मैं (प्रतीचीं अहिंसतीं त्वा प्रैमि) पश्चिमाभिमुख खड़ी और न हिंसा करनेवाली तुझे शालाके पास मैं आता हूँ । (अग्निः आपः च अन्तः) अग्नि और जल अन्दर हैं जो (ऋतस्य प्रथमा द्वाः) यज्ञके पहिले द्वार हैं ॥ २२ ॥

(इमाः अयक्ष्माः यक्ष्मनाशनीः आपः) ये रोगरहित, रोगनाशक जल (प्रभरामि) शालामें भरता हूँ । (अमृतेन अग्निना सह) जल और अग्निके साथ (गृहान् उप प्र सीदामि) घरोंके प्रति मैं आता हूँ ॥ २३ ॥

हे शाले ! (नः पाशं मा प्रतिमुचः) हमपर पाश न छोड़, (गुरुः भारः, लघुः भव) बड़े भार को हलका करनेवाली हो । (वधूं इव) वधूके समान (त्वा यत्र कामं भरामसि) तुझे इच्छाके अनुसार भर देते हैं ॥ २४ ॥

भावार्थ- घरकी पश्चिमकी ओर मुख करके घरमें मनुष्य प्रवेश करे । घर में अग्नि और जल सदा रखा जावे । ये ही दो पदार्थ गृहस्थाश्रमके यज्ञको सिद्ध करनेवाले हैं । इस प्रकारका घर सदा सुख देनेवाला होगा ॥ २२ ॥

जहां रोग दूर करनेवाला पानी होगा, वहांसे वह घरमें भरना चाहिये । घरमें जल और अग्नि सदा रहने चाहिये । ऐसे घरमें मनुष्य निवास करे ॥ २३ ॥

इस प्रकारके घरमें रहनेसे संसारका बड़ा भार बहुत हलका होगा । जिस प्रकार कुलवधूका संरक्षण और पोषण लोग करते हैं उसी प्रकार ऐसे घरकी रक्षा करना चाहिये और इस घरमें उत्तमोत्तम पदार्थ लाकर रखने चाहियें ॥ २४ ॥

प्राच्या दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः ॥ २५ ॥
 दक्षिणाया दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः ॥ २६ ॥
 प्रतीच्या दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः ॥ २७ ॥
 उदीच्या दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः ॥ २८ ॥
 ध्रुवाया दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः ॥ २९ ॥
 ऊर्ध्वाया दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः ॥ ३० ॥
 दिशोदिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः ॥ ३१ ॥ (८)

अर्थ—(शालायाः प्राच्याः दक्षिणायाः) घरकी पूर्व और दक्षिण (प्रतीच्याः उदीच्याः) पश्चिम और उत्तर, (ध्रुवायाः ऊर्ध्वायाः) ध्रुव और ऊर्ध्व (दिशोदिशः) दिशा और उपदिशाओंके (महिम्ने नमः) महिमाके लिये नमस्कार हो, तथा (स्वाह्येभ्यः देवेभ्यः स्वाहा) उत्तम वर्णन करने योग्य देवोंके लिये (स्वाहा=सु+आह) उत्तम प्रशंसा कहने हैं ॥ २५-३१ ॥

भावार्थ— घरकी चारों दिशाओं और उपदिशाओंमें जो सुंदर दृश्यों की महिमा होगी, उसकी सत्कारपूर्वक प्रसन्नता बढ़ानी चाहिये। उत्तम प्रशंसनीय पृथ्वी, आप, अग्नि, वायु, चन्द्र, सूर्य, आदि देवोंकी प्रसन्नता इस घरपर रहेगी, ऐसा आचार व्यवहार करना चाहिये ॥ २५—३१ ॥

घरकी प्रसन्नता ।

गृहनिर्माण करनेका और उसको आनंदित, प्रसन्न तथा उत्तम स्वास्थ्यसंपन्न रखनेका उपदेश इस सूक्तमें है। घर उत्तम प्रमाणसे निर्माण किया जावे, उसके स्तंभ, उपरकी लकड़ियां, छप्परका लकड़ी सामान सब सुंदर तथा सुव्यवस्थित होवे और सब जोड़ अच्छे प्रकार मजबूत किये जावें। किसी स्थानपर कमजोरी न रहे। क्योंकि सब घर-वालोंका स्वास्थ्य घरकी सुरक्षितता पर निर्भर है। ऐसा सुंदर और मजबूत घर रहने-वालोंके कष्टोंको दूर कर सकता है, परंतु कमजोर और अशक्त तथा बेखयालसे बनाया गया घर रहनेवालोंका कब नाश करेगा, इसकामी पता नहीं होगा।

सुतार तख्ताण और अन्य कारीगर ऐसे लगाये जावें की जो संधिस्थानोंको (परुषि विद्वान् शस्ता) अच्छी प्रकार काटने और जोड़नेकी कला जाननेवाले हों। बांस, लकड़ियां, घास, चटाइयां आदि जो भी सामान घरमें रखनेका अथवा घरपर लगानेका

हो वह सब उत्तम, निर्दोष और सुखवस्थासे रखा जावे ।

गृहनिर्माण करनेकी विद्या जाननेवाले को 'मानपति' कहते हैं । यह घरका प्रमाण से नकशा तैयार करता है और उसी प्रमाणसे भूमीपर रचना करवाता है । इसके लिये प्रमाणोंसे प्रमाणयुक्त जो घर होता है वह सुखदायी होता है । 'मानपति' (इंजिनियर) को 'सूत्रधार' भी कहते हैं क्यों कि यह सूत्रसे सबका प्रमाण दिखाता है । इस 'मानपती' द्वारा बनाई होनेके कारण इस शालाको 'मान-पत्नी' कहते हैं, इसका शब्दार्थ "प्रमाण दर्शानेमें जो कुशल कारीगर है उसके प्रमाणसे इसकी पालना हुई है ।" हरएक घरके विषयमें यह सत्य है ।

घरमें छोंके टंगीं हों और उनपर घृतदुग्धादि पदार्थ रखे जायं । यहाँ ये पदार्थ रखनेसे चूटीयों और चूड़ोंसे बचते हैं । और इस कारण आरोग्य देनेवाले होते हैं ।

घर (उद्धिता) ऊंचे स्थानपर और ऊंचा हो । ठिगणा न हो, क्यों कि ऊंचे घरमें शुद्धवायु आती है जो मनुष्योंको नीरोग बना देती है । अतः कहा है कि-

उद्धिता शाला तन्वे शं भवति । (मं० ६)

'ऊंचा घर शरीरके लिये सुखकारक होता है ।' वैसा ठिगणा नहीं होता । घरमें एक उपासना करनेका स्थान, संध्या हवन करनेका योग्य कमरा, एक भोजनशाला, एक स्त्रियोंके लिये स्थान, एक अतिथियों और घरवालोंके रहनेका स्थान, एक धान्यादिका संग्रह स्थान ऐसे अलग अलग कमरे हों । घरकी छतपर सुंदर कपड़ा ताना जावे, जिससे कमरेकी शोभा बढ़ती है । घरमें रहनेवाले ऐसा कहें कि घरका निर्माण करनेवाला "मानपति" (इंजिनियर) और बनानेवाले कारीगर दीर्घ आयुतक जीवित रहें । घरमें रहनेवालोंको सुख हुआ तो हि वे ऐसा कहेंगे, अतः बनानेवाले लोग कुशलतापूर्वक गृह निर्माण का कार्य करें । और घरमें रहनेवालोंको सुख लगे, इस विचारसे घर बनावें । केवल वेतन के लिये बनाया जाय तो यह बात नहीं बनेगी । यह तो एक परस्पर प्रेमका विचार है । इसी विचारसे ग्रामके कारीगर और गृहके स्वामी इनमें परस्पर हितकी बुद्धि जाग्रत रहेगी ।

वृक्ष काटनेवाले, विविध लकड़ियां बनानेवाले, अन्य गृहोपयोगी सामान संग्रहित करनेवाले, जोड़नेवाले और घरमें रहनेवाले इन सब की सहकारितासे घर निर्माण होता है, अतः ग्राममें इनकी सहकारिता होनी चाहिये । और एकका हित

दूसरेको करना चाहिये । घरका स्वामी घनवान और प्रतिष्ठित क्यों न हो, परंतु जिस समय वह लकड़ी काटनेवालेको मिले, वह (तस्मै दात्रे नमः) उस लकड़ी काटनेवाले को नमस्कार करे, वह लकड़ी काटनेवाला निर्धन हि क्यों न हो, परंतु वह घरके मालिकसे मिले तो वह (शालापतये नमः) घरके स्वामीको नमस्कार करे । इस प्रकार ये लोग परस्पर सन्मान करें, एक दूसरेका आदर करें । कोई किसीका निरादर न करे ।

यहांतक आदर दर्शाना चाहिये कि घरका स्वामी अपने घोड़ों, गौवों, बैल आदि पशुओंका भी उत्तम प्रकार आदर सत्कार करें । इस प्रकार जहां सबका सत्कार होता है ऐसे घरमें रहनेवाले मनुष्य उत्तम आनन्दका अनुभव करेंगे, इसमें संदेह हि क्या हो सकता है ?

घर ऐसा बनाया जावे कि जो पीछेके आकाशपर सुंदर दिखाई देवे । घरके आसपास की शोभा वृक्षादिकोंसे सुंदर दिखाई देवे । और प्रयत्नसे अधिक सौंदर्य बनाया जावे । घरके मध्यमें अत्यंत सुरक्षित स्थानमें घन, जेवर आदि रखनेका स्थान—खजानेका कमरा—बनाया जावे । (शेषधिभ्यः उदरं) जैसा मनुष्यके शरीर में पेट बीचमें होता है, अतिसुरक्षित स्थानपर होता है, उसी प्रकार यहां घरके मध्यमें खजानेका कमरा बनाया जावे । घरमें धान्यके स्थानमें सब प्रकार (ऊर्जः) धान्य, (विश्वाम्नं) अन्नकी सामग्री संग्रहित की जावे, (पयः) जल, पेय पदार्थ, रसपानके साधन घरमें भरपूर हों । ऐसा घर सब रहनेवाले पारिवारिक जनोंको सुख देता है ।

घरके स्तंभ ऐसे बलवान हों जैसे हाथिनीके पांव होते हैं, क्योंकि इन्हींपर घरका छप्पर आदि रहता है । दूसरा मजला करना हो तो एकके ऊपर दूसरा बनाया जावे, जैसे (कुलाये अधि कुलायं) घोंसला एकपर दूसरा बनाते हैं और (कोशे कोशः) एक कोश पर दूसरा कोश रखा जाता है । नीचेका स्थान मजबूत हो, नहीं तो ऊपरके भारसे नीचला स्थान दब जायगा । ऐसे उत्तम घरमें मनुष्यका जन्म होवे । सभी प्राणियोंके लिये ऐसे स्थान बनाये जावें । पक्षीभी प्रसूतिके पूर्व उत्तम घोंसले निर्माण करते हैं, पशुभी सुरक्षित स्थान देखते हैं, यह देखकर मनुष्योंको अपने घरोंमें प्रसूतिके लिये उत्तम स्थान बनाने चाहिये ।

घरमें दो, चार, छः, आठ, दस कमरे अथवा चौक बनाये जा सकते हैं । अंदर रहनेवाले मनुष्योंकी संख्याके अनुसार तथा उस घरमें होनेवाले कार्योंके अनुसार घर छोटा या बड़ा होना चाहिये ।

अग्निर्ह्यन्तरापश्चर्तस्य प्रथमा द्वाः । (मं० २२)

“घरमें अग्नि और जल अवश्य रहे, क्यों कि इन्हींसे सब प्रकारके यज्ञ होते हैं ।” कोई अतिथि आगया तो उसको श्रमपरिहारके लिये कमसे कम जलपान दिया जावे, और शीतनिवारणके लिये आगके स्थान के पास उसको बिठलाया जावे । ये दो पदार्थ गरीबसे गरीब और धनीसे धनी मनुष्यके घरमें अवश्य रहें और इनसे आदरातिथ्य होता जावे । मनुस्मृतिमें भी कहा है कि—

तृणानि भूमिरुदकं वाक्चतुर्थी च सूनुता ।

एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन । (मनु० ३।१०१)

“बैठनेके लिये चटाई, भूमि, जल और मीठा भाषण ये चार बातें अतिथिके आदरके लिये सज्जनके घरमें कभी न्यून नहीं होतीं ।” यहाँ उदक है । वेदके ऊपरके मंत्रमें जल पीनेके लिये और आग सेकनेके लिये प्रत्येक घरमें अवश्य रहे ऐसा कहा है । अतिथिके समादरके ये प्रकार ध्यानसे देखने योग्य हैं । घरमें जल रखना हो तो उत्तम निर्दोष रखना चाहिये इस विषयमें सूचना यह है—

अयक्ष्मा यक्ष्मनाशनीः आपः प्रभरामि ।

गृहान् उपप्रसीदामि । (मं० २३)

“मैं घरमें ऐसा जल भरता हूँ कि जो स्वयं रोग उत्पन्न करनेवाला न हो और जो रोगोंको दूर करनेवाला हो । इस रीतिसे मैं घरकी प्रसन्नता बढ़ाता हूँ ।” हरएक गृहस्थी ऐसाही कहे और अपने घरकी अधिकसे अधिक प्रसन्नता करनेका यत्न करे । (वधूं इव) जैसी स्त्रीकी रक्षा करना चाहिये उसी प्रकार गृहकी भी रक्षा करना योग्य है । यहाँ वधूकी प्रसन्नता रखना, उसको दृष्टपुष्ट रखना, निर्दोष रखना, सुरक्षित रखना आदि बातें जानने योग्य हैं और इस दृष्टांतसे घरकी सुरक्षितता की बातेंभी जानी जाती हैं । शाला (घर) भी एक कुलवधु है ऐसा मानकर उसकी सुरक्षितता और शोभाके बढ़ानेके लिये प्रयत्न करना चाहिये । ऐसा करनेसेहि (गुरुः भारः लघुः) संसार का बड़ा भारी बोझ बहुत हलका हो जाता है ।

जहाँ ऐसे ढंगसे कुलवधुके समान घरकी सुव्यवस्था की जाती है, वहाँ घरके चारों ओरकी दिशा और उपदिशाएं प्रसन्न होती हैं, और वहाँ देवताओंका निवास होने-योग्य स्थान बनता है । और घरकी महिमा बढ़ जाती है ।

हरएक गृहस्थी अपने घरकी महिमा इस प्रकार बढ़ावे और अपना घर देवताओंके निवास करने योग्य करे और अपने सिर परका संसारका बोझ हलका करे ।



[४]

(ऋषिः— ब्रह्मा । देवता—ऋषभः)

साहस्रत्स्वेष ऋषभः पयस्वान् विश्वा रूपाणि वृक्षणासु विभ्रत् ।
 भद्रं दात्रे यजमानाय शिक्षन् बार्हस्पत्य उस्त्रियस्तन्तुमातान् ॥ १ ॥
 अपां यो अग्रे प्रतिमा बभूव प्रभूः सर्वस्मै पृथिवीव देवी ।
 पिता वत्सानां पतिरघ्न्यानां साहस्रे पोषे अपि नः कृणोतु ॥ २ ॥

अर्थ—(साहस्रः त्वेषः) हजारों शक्तियोंसे युक्त तेजस्वी, (पयस्वान् ऋषभः) दूधवाला बैल (वृक्षणासु विश्वा रूपाणि विभ्रत्) नदीतीरोंपर बहुत रूपोंको धारण करता हुआ (बार्हस्पत्यः उस्त्रियः) बृहस्पतिके संबंधका यह बैल (दात्रे यजमानाय भद्रं शिक्षन्) दान देनेवाले यजमानके लिये भलाईकी शिक्षा देता हुआ (तन्तुं आतान्) यज्ञके धागेको फैलाता है ॥ १ ॥

(यः अग्रे) जो पहिले (अपां प्रतिमा बभूव) जलोंके मेघकी उपमा हुआ करती है (देवी पृथ्वी इव) पृथिवी देवीके समान (सर्वस्मै प्रभूः) सब पर प्रभाव चलानेवाला, (वत्सानां पिता) बच्चोंका स्वामी (अघ्न्यानां पतिः) गौवोंका पति (नः) हमें (साहस्रे पोषे अपि कृणोतु) हजारों प्रकारकी पुष्टिमें करे, रखे ॥ २ ॥

भावार्थ— बैल हजारों शक्तियोंसे युक्त है । बैलहि दूधवाला है । नदियोंके तटाकोंपर इसके विविध रूप दीखते हैं । इसका दान करनेसे हित होता है और यज्ञका प्रचार होता है ॥ १ ॥

इसको जलदायी मेघोंकी उपमा दीयी जाती है । पृथ्वी देवीपर यह अधिक प्रभाववाला है, यह बछड़ोंका पिता और गौवोंका पति है । इससे हमारी हजारों प्रकारकी पुष्टी होती है ॥ २ ॥

पुमानन्तर्वान्तस्थविरः पयस्वान् वसोः कबन्धमृषभो विभर्ति ।

तमिन्द्राय पथिभिर्देवयानैर्हुतमग्निर्वहतु जातवेदाः ॥ ३ ॥

पिता वत्सानां पतिरघ्न्यानामथो पिता महतां गर्गराणाम् ।

वत्सो जरायुं प्रतिधुक् पीयूषं आमिक्षा घृतं तद् वस्य रेतः ॥ ४ ॥

देवानां भाग उपनाह एषोऽपि रस ओषधीनां घृतस्य ।

सोमस्य भक्षमवृणीत शक्रो बृहन्नद्रिरभवद् यच्छरीरम् ॥ ५ ॥

अर्थ—(पुमान् अन्तर्वान्) पुरुष अपने अन्दर शक्ति धारण करनेवाला, (स्थविरः पयस्वान्) बड़ा दूधवाला, (ऋषभः वसोः कबन्धं विभर्ति) बैल घनके शरीरको धारण करता है । (तं देवयानैः पथिभिः हुतं) उस देवयान मार्गोंसे समर्पितको (जातवेदाः अग्निः इन्द्राय वहतु) जातवेद अग्नि इन्द्रके लिये ले जाये ॥ ३ ॥

(वत्सानां पिता) बच्चोंका पिता, (अघ्न्यानां पतिः) गौवोंका पति, (अथो) और (महतां गर्गराणां पिता) बड़े प्रवाहोंका पालक, (वत्सः जरायु) बच्चा जेर से आकर (प्रतिधुक् पीयूषः) प्रतिदिन अमृत का दोहन करता हुआ (आमिक्षा घृतं) दही और घी देता है (तत् उ अस्य रेतः) वह निःसन्देह इसका वीर्य है ॥ ४ ॥

(एषः देवानां उपनाहः भागः) यह देवोंका समीप स्थित भाग है, (अपां ओषधीनां घृतस्य रसः) जल का औषधियोंका और घीका यह रस है, (सोमस्य भक्षं शक्रः अवृणीत) यही सोमका रस इन्द्रने प्राप्त किया, इसका (यत् शरीरं बृहत् अद्रिः अभवत्) जो शरीर था वही बड़ा मेघ बना है ॥ ५ ॥

भावार्थ— यह पुरुष है, इसके अन्दर शक्ति है, यह सामर्थ्यवाला और दूधवाला है । यह घन का धारण करता है । उस समर्पित हुए को जातवेद अग्नि इन्द्रके लिये देवयानके मार्गों से लेजाता है ॥ ३ ॥

बछड़ोंका पिता और गौवोंका पति, बड़ी जलधाराओंका स्वामी, जन्मने ही अमृतका दोहन करके देता है, तथा दही और घी देता है, मानो यह इसीका बल है ॥ ४ ॥

यह दूध देवोंका भाग है, यह औषधियोंका रस है, यह सोमरसके साथ पीया जाता है । इसके शरीरको मेघकी ही उपमा है ॥ ५ ॥

सोमेन पूर्णं कलशं विभर्षिं त्वष्टा रूपाणां जनिता पशूनाम् ।
 शिवास्ते सन्तु प्रजन्व इह या इमा न्यस्मभ्यं स्वधिते यच्छ या अमूः ॥ ६ ॥
 आज्यं विभर्ति घृतमस्य रेतः साहस्रः पोषस्तमु यज्ञमाहुः ।
 इन्द्रस्य रूपमृषभो वसानः सो अस्मान् देवाः शिव ऐतु दत्तः ॥ ७ ॥
 इन्द्रस्यौजो वरुणस्य बाहू अश्विनोरंसौ मरुतामियं ककुत् ।
 बृहस्पतिं संभृतमेतमाहुर्धे धीरांसः कवयो ये मनीषिणः ॥ ८ ॥

अर्थ—(सोमेन पूर्णं कलशं विभर्षिं) सोमरससे परिपूर्ण कलशका तू धारण करता है । और तू (रूपाणां त्वष्टा) रूपोंका बनानेवाला और (पशूनां जनिता) पशुओंका उत्पादक है, (याः इमाः ते प्रजन्वः) जो ये तेरे सन्तान हैं वे (शिवाः सन्तु) हमारे लिये शुभ हों । हे (स्वधिते) शस्त्र ! (याः अमूः अस्मभ्यं नि यच्छ) जो वहाँ हैं वे हमारे लिये दे ॥ ६ ॥

(अस्य घृतं आज्यं) इसका घी और आज्य (रेतः विभर्ति) वीर्यको धारण करता है । (साहस्रः पोषः) जो हजारोंका पोषक है (तं उ यज्ञं आहुः) उसको यज्ञ कहते हैं । (वृषभः इन्द्रस्य रूपं वसानः) बैल इन्द्रका रूप धारण करता हुआ, हे (देवाः) देवो ! (सः दत्तः अस्मान् शिवः आ एतु) वह दान दिया हुआ हमारे पास शुभ होकर प्राप्त होवे ॥ ७ ॥

(ये धीरांसः) जो धैर्यवाले और (ये मनीषिणः कवयः) जो मननशील कवि हैं वे (एतं संभृतं बृहस्पतिं आहुः) इस संभारयुक्तको बृहस्पति कहते हैं तथा यह (इन्द्रस्य ओजः) इन्द्रकी शक्ति, (वरुणस्य बाहू) वरुणके बाहू, (अश्विनोः अंसौ) अश्विदेवोंके कन्धे, (मरुतां इयं ककुद्) मरुतोंकी यह कोहान है ऐसा कहते हैं ॥ ८ ॥

भावार्थ—सोमरससे भरा हुआ कलश यह धारण करता है, यह गौ आदिका उत्पन्न कर्ता, विविध रूपोंका बनानेवाला है, इसके सन्तान हमें कल्याणदायी हों, शस्त्र इनकी रक्षा करके हमें देवे ॥ ६ ॥

यह घी, और वीर्य धारण करता है, हजारों प्रकारकी पुष्टी देता है अतः इसको यज्ञ कहते हैं । यह इन्द्रका रूप धारण करके हमारे लिये शुभ होवे ॥ ७ ॥

जो धैर्ययुक्त कवि और ज्ञानी हैं वे इसको देवताओंकी शक्तियोंसे युक्त

दैवीर्विशः पर्यस्वाना तनोषि त्वामिन्द्रं त्वां सरस्वन्तमाहुः ।

सहस्रं स एकमुखा ददाति यो ब्राह्मण ऋषभमाजुहोति ॥ ९ ॥

बृहस्पतिः सविता ते वयो दधौ त्वष्टुर्वायोः पर्यात्मा त आभृतः ।

अन्तरिक्षे मनसा त्वा जुहोमि बर्हिष्टे द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ॥ १० ॥ (९)

✓ य इन्द्र इव देवेषु गोष्वेति विवावदत् ।

तस्य ऋषभस्याङ्गानि ब्रह्मा सं स्तौतु भद्रया ॥ ११ ॥

अर्थ- तू (पयस्वान् दैवीः विशः आ तनोषि) दूधवाला दिव्यगुणी प्रजाको उत्पन्न करता है । (त्वां इन्द्रं) तुझे इन्द्र और (त्वां सरस्वन्तं आहुः) सारवाला कहते हैं । (यः ब्राह्मणः) जो ब्राह्मण (ऋषभं आ जुहोति) बैलका दान करता है (सः एकमुखाः सहस्रं ददाति) वह एक स्थानपर मुख करता हुआ हजारोंका दान करता है ॥ ९ ॥

(बृहस्पतिः सविता) बृहस्पति और सविता (ते वयो दधौ) तेरी आयुका धारण करते हैं । (ते आत्मा) तेरा आत्मा (त्वष्टुः वायोः परि आभृतः) त्वष्टा और वायुसे परिपूर्ण है । (मनसा त्वा अन्तरिक्षे जुहोमि) मनसे तुझे अन्तरिक्षमें अर्पण करता हूँ, (उभे द्यावापृथिवी ते बर्हिः स्ताम्) दोनों शुलोक और भूलोक तेरे आसन हों ॥ १० ॥

(देवेषु इन्द्रः इव) देवोंमें जैसा इन्द्र वैसा (यः गोषु विवावदत् एति) गौओंमें शब्द करता हुआ चलता है । (तस्य ऋषभस्य अङ्गानि) उस बैलके अङ्गोंकी (भद्रया ब्रह्मा संस्तौतु) प्रशंसा शुभवाणीसे ब्रह्मा करे ॥ ११ ॥ मानते हैं, इसमें बृहस्पति, इन्द्र, वरुण, अश्विनी, मरुत् इनकी शक्तियाँ हैं ॥ ८ ॥

यह दूध देनेवाला बैल उत्तम प्रजा उत्पन्न करता है, उसको सारवान् इन्द्र कहते हैं । जो बैलका समर्पण करता है उसको हजारों दानोंका श्रेय होता है ॥ ९ ॥

बृहस्पति और सविताने उसकी आयुका धारण किया है । त्वष्टा और वायुका सत्त्व इसमें है । इसका मनसे अन्तरिक्षमें समर्पण करनेसे भूमि-पर और आकाशके नीचे यह रहता है ॥ १० ॥

जैसा देवोंमें इन्द्र वैसा यह बैल गौओंमें है । ज्ञानीहि इसके अवयवोंके महत्त्व का कथन कर सकता है ॥ ११ ॥

पार्श्वे आस्तामनुमत्या भगस्यास्तामनुवृजौ ।
 अष्टीवन्तावब्रवीन्मित्रो ममैतौ केवलाविति ॥ १२ ॥
 भसदासीदादित्यानां श्रोणीं आस्तां बृहस्पतेः ।
 पुच्छं वातस्य देवस्य तेन धूनोत्योषधीः ॥ १३ ॥
 गुदा आसन्त्सिनीवाल्याः सूर्यायास्त्वचमब्रुवन् ।
 उत्थातुरब्रुवन् पद ऋषभं यदकल्पयन् ॥ १४ ॥
 क्रोड आसीज्जामिशंसस्य सोमस्य कलशो धृतः ।
 देवाः संगत्य यत् सर्वं ऋषभं व्यकल्पयन् ॥ १५ ॥

अर्थ—(पार्श्वे अनुमत्याः आस्तां) दोनों पासे अनुमतिके हैं, (अनूवृजौ भगस्य आस्तां) पसुलियोंके दोनों भाग भगके हैं, (मित्रः अब्रवीत्) मित्रने कहा कि (अष्टीवन्तौ केवलौ एतौ मम इति) दो घुटने केवल मेरे हैं ॥ १२ ॥

(भसद् आदित्यानां आसीत्) पृष्ठवंशका अन्तिम भाग आदित्योंका है, (श्रोणी बृहस्पतेः आस्तां) कुल्हे बृहस्पतिके हैं, (पुच्छं वातस्य देवस्य) पुच्छ वायु देवका है, (तेन ओषधीः धूनोति) उससे औषधियोंको हिलाता है ॥ १३ ॥

(गुदाः सिनीवाल्याः आसन्) गुदाभाग सिनीवालीके हैं, (त्वचं सूर्यायाः अब्रुवन्) त्वचा सूर्यप्रभाकी है, ऐसा कहते हैं । (पदः उत्थातुः अब्रुवन्) पैर उत्थाताके हैं ऐसा कहा है, (यत् ऋषभं अकल्पयन्) इस प्रकार बैलकी कल्पना विद्वानोंने की है ॥ १४ ॥

(क्रोडः जामिशंसस्य आसीत्) गोद जामिशंसकी थी, (कलशः सोमस्य धृतः) कलश सोमका धारण किया है, इस प्रकार (सर्वे देवाः संगत्य) सब देव मिलकर (यत् ऋषभं व्यकल्पयन्) बैलकी कल्पना करते रहे ॥ १५ ॥

भाषार्थ—इसके अवयवोंमें अनुमति, भग, मित्र, आदित्य, बृहस्पति, वायु आदि देवताओंका अधिष्ठान है ॥ १२-१३ ॥

सिनीवाली, सूर्यप्रभा, उत्थाता, जामिशंस, सोम इन देवताओं के लिये क्रमशः गुदा, त्वचा, पैर, गोद, कलश ये इसके अवयव माने गये हैं । इस तरह सब देवोंने इस बैलके विषयमें कल्पना की है ॥ १४-१५ ॥

ते कुष्ठिकाः सरमायै कूर्मेभ्यो अदधुः शफान् ।
 ऊर्ध्वमस्य कीटेभ्यः श्ववर्तेभ्यो आधारयन् ॥ १६ ॥
 शृङ्गाभ्यां रक्षः ऋषत्यवर्तिं हन्ति चक्षुषा ।
 शृणोति भद्रं कर्णाभ्यां गवां यः पतिरघ्न्यः ॥ १७ ॥
 शतयाजं स यजते नैनं दुन्वन्त्यग्नयः ।
 जिन्वन्ति विश्वे तं देवा यो ब्राह्मण ऋषभमाजुहोति ॥ १८ ॥

अर्थ— (कुष्ठिकाः सरमायै ते अदधुः) कुष्ठिकोंको सरमाके लिये वे
 धारण करते रहे । और (शफान् कूर्मेभ्यः) खुरोंको कछुओंके लिये
 धारण करते रहे । (अस्य ऊर्ध्वं) इसका अपक्व अन्न (श्ववर्तिभ्यः
 कीटेभ्यः आधारयन्) कुत्तेके साथ रहनेवाले कीड़ोंके लिये रख
 दिया ॥ १६ ॥

(यः अघ्न्यः गवां पतिः) जो गौवोंका हननके अयोग्य पति अर्थात्
 बैल है, वह (कर्णाभ्यां भद्रं शृणोति) कानोंसे कल्याणकी बातें सुनता है,
 (शृङ्गाभ्यां रक्षः ऋषति) सींगोंसे राक्षसोंको हटा देता है और (चक्षुषा
 अवर्तिं हन्ति) आंखसे अकालको नष्ट करता है ॥ १७ ॥

(यः ब्राह्मणे ऋषभं आजुहोति) जो ब्राह्मणोंको बैल समर्पण करता है
 (तं विश्वे देवाः जिन्वन्ति) उसको सब देव तृप्त करते हैं । (सः शतयाजं
 यजति) वह सैंकड़ों याजकों द्वारा यज्ञ करता है और (एनं अग्नयः न
 दुन्वन्ति) इसको अग्नि कष्ट नहीं देते ॥ १८ ॥

भावार्थ—सरमा, कूर्म, श्ववर्ति, क्रिमी आदि के लिये इसके कुष्ठिका, खुर,
 और अपचित अन्नभाग रखे हैं ॥ १६ ॥

बैल गौका पति है । वह कानोंसे उत्तम शब्द सुनता है, सींगोंसे शत्रु-
 ओंको हटाता है और आंखसे अकालको दूर करता है ॥ १७ ॥

जो ब्राह्मणको बैल दान देता है, उसकी सब देव तृप्ति करते हैं । वह
 सैंकड़ों प्रकारके याजकों द्वारा यज्ञ करता हुआ अग्निके भयसे दूर रहता
 है ॥ १८ ॥

ब्राह्मणेभ्यः ऋषभं दत्त्वा वरीयः कृणुते मनः ।

पुष्टिं सो अघ्न्यानां स्वे गोष्ठेर्व पश्यते ॥ १९ ॥

गावः सन्तु प्रजाः सन्त्वथो अस्तु तनूबलम् ।

तत् सर्वमनु मन्यन्तां देवा ऋषभदायिने ॥ २० ॥

अयं पिपान इन्द्र इद् रयिं दधातु चेतनीम् ।

अयं धेनुं सुदुघां नित्यवत्सां वशं दुहां विपश्चितं परो दिवः ॥ २१ ॥

अर्थ— (ब्राह्मणेभ्यः ऋषभं दत्त्वा) ब्राह्मणोंको बैल देकर जो अपना (मनः वरीयः कृणुते) मन श्रेष्ठ बनाता है । (सः स्वे गोष्ठे) वह अपनी गोशालामें (अघ्न्यानां पुष्टिं अब पश्यते) गौओंकी पुष्टी देखता है ॥ १९ ॥

(गावः सन्तु) गौवें हों, (प्रजाः सन्तु) प्रजाएं हों, (अथो तनूबलं अस्तु) और शारीरिक बल हो । (तत् सर्वं) यह सब (ऋषभदायिने) बैल देनेवालेके लिये (देवाः अनुमन्यन्तां) देव अपनी अनुमतिके साथ देवें ॥ २० ॥

(अयं पिपानः इन्द्रः इत्) यह पुष्ट इन्द्र (चेतनीं रयिं दधातु) चेतना देनेवाले धनका धारण करे । तथा (अयं) यह इन्द्र (सुदुघां) उत्तम दोहने योग्य (नित्यवत्सां) बछड़ोंके साथ उपस्थित, (वशं दुहां) वशमें रहकर दुहने योग्य, (विपश्चितं धेनुं) ज्ञानयुक्त धेनुको (परः दिवः) श्रेष्ठ शुलोकके परेसे धारण करे ॥ २१ ॥

भावार्थ— जो ब्राह्मणोंको बैल दान करके अपना मन श्रेष्ठ बनाता है, वह अपनी गोशालामें बहुत गौवें पुष्ट हुई हैं, इसका अनुभव करता है ॥ १९ ॥

बैलका दान करनेवालेको देवोंकी अनुमतिसे गौवें मिलतीं, प्रजा होती है और शरीरका बलभी प्राप्त होता है ॥ २० ॥

यह प्रभु चैतन्ययुक्त गोरूपी धन हमें देवे । यह शुलोकके परेसे ऐसी गौ लावे कि जो उत्तम दूध देनेवाली, नित्य बछड़ेको साथ रखनेवाली, बिनाकष्ट दूध देनेवाली और स्वामीको पहचाननेवाली हो ॥ २१ ॥

पिशङ्गरूपो नभसो वयोधा ऐन्द्रः शुष्मो विश्वरूपो न आगन् ।
 आयुरस्मभ्यं दधत् प्रजां च रायश्च पोषैरभि नः सचताम् ॥ २२ ॥
 उपेहोपपर्वनास्मिन् गोष्ठ उप पृञ्च नः ।
 उप ऋषभस्य यद् रेत उपेन्द्र तव वीर्यम् ॥ २३ ॥
 एतं वो युवानं प्रति दध्मो अत्र तेन क्रीडन्तीश्चरत वशां अनु ।
 मा नो हासिष्ट जनुषा सुभागा रायश्च पोषैरभि नः सचध्वम् ॥ २४ ॥ (२४)
 ॥ इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

अर्थ—(पिशङ्गरूपः) लाल रंगवाला, (नभसः) आकाशसे (ऐन्द्रः शुष्मः) इन्द्रके संबंधी बल धारण करनेवाला (विश्वरूपः वयोधाः नः आगन्) समस्त रूपोंसे युक्त अन्नका धारण करनेवाला हमारे पास आगया है। वह (आयुः प्रजां च रायः च) आयु, प्रजा और धन (अस्मभ्यं दधत्) हमारे लिये धारण करता हुआ (पोषैः नः अभिसचन्तां) पुष्टियोंसे हमें प्राप्त होवे ॥ २२ ॥

(इह अस्मिन् गोष्ठे) यहां इस गोशालामें (उप उप पर्वन) समीप रह । और (नः उपपृञ्च) हमें प्राप्त हो । (ऋषभस्य यद् रेतः) ऋषभका जो वीर्य है, हे इन्द्र ! (तव वीर्यं उप) वह तेरा वीर्य हमारे पास आजावे ॥ २३ ॥

(एतं युवानं वः प्रतिदध्मः) इस युवाको हम आपके लिये समर्पित करते हैं, (अत्र तेन क्रीडन्तीः चरत) यहां उसके साथ खेलती हुई विश्वरो और (वशान् अनु) इच्छित स्थानोंके प्रति जाओ । हे (सुभागाः) भाग्य युक्त गौवो ! (जनुषा मा हासिष्ट) जन्मके साथ हमारा त्याग न करो, (च पोषैः रायः) पुष्टियोंके साथ रहनेवाले धन (नः अभिसचध्वं) हमें दो ॥ २४ ॥

भावार्थ— आकाशके पाससे बैल ऐसा आया है कि जो लाल रंगवाला, बलवान, अनेक रंगोंसे युक्त, अन्नको देनेवाला है। यह हमें आयु, प्रजा और धन हमारे लिये देवे और हमें पुष्टि देवे ॥ २२ ॥

यह बैल इस गोशालामें रहे, हमारे पास रहे। इस बैलका जो बल है वह इन्द्रकी शक्ति है, यह हमें प्राप्त हो ॥ २३ ॥

भावार्थ— इन गौवोंके पास हम इस बैलको घर देते हैं । इसके साथ ये गौवें खेलें, कूदें, और विचरें । जहाँ चाहे वहाँ घूमें । गौवें हमारा त्याग न करें, हमारे पास रहें । पुष्ट हों और हम सबको पुष्ट करें ॥ २४ ॥

बैलकी महिमा ।

इस सूक्तमें बैलकी महिमा वर्णन की है । उत्तमसे उत्तम बैलका घरमें पालन करनेसे कितने लाभ होते हैं इसका वर्णन इस सूक्तमें पाठक देखें—

साहस्रस्त्वेषः ऋषभः पयस्वान् । (मं० १)

“हजारों तेजोंसे और बलोंसे युक्त यह बैल है, और यह (पयस्वान्) दूध देनेवाला है ।” पाठक यहां आश्चर्य करेंगे कि बैल दूध देनेवाला किस प्रकार हो सकता है ? प्रथम और तृतीय मंत्रमें इस बैलको (पयस्वान्) दूधवाला कहा है । अतः इस वर्णनमें कुछ हेतु है । जैसा बैल होता वैसा उसकी गौरूप संततिमें दूध न्यूनाधिक होता है । अर्थात् गौमें दूध उत्पन्न करनेकी शक्ति बैलपर निर्भर है । कई जातिके बैल कम दूध देनेवाली संतान पैदा करते हैं और कई जातीके बैल विशेष दूध देनेवाली संतान उत्पन्न करते हैं । अतः यदि अधिक दूध देनेवाली गौवें उत्पन्न करानेकी इच्छा हो, तो अधिक दूध देनेवाली गौओंके साथ उस जातिका बैल रखना चाहिये कि जो अधिक दूध देनेवाली जातीका हो । ऐसी गौवें और ऐसे बैल एक स्थानपर रखने चाहिये । अर्थात् कम दूध देनेवाली जातीके बैल अधिक दूध देनेवाली गौके साथ कदापि नहीं रखना चाहिये क्यों कि इससे उत्पन्न होनेवाली गौका दूध घट जायगा । अतः २४ वें मंत्रमें कहा है—

एतं वो युवानं प्रतिदध्मः तेन अन्नं क्रीडन्तीश्चरत वशाँ अनु ॥ (मं० २४)

“इस युवा बैलको गौवोंके साथ रखते हैं, इसके साथ ये हि गौवें खेलें और इष्ट प्रदेशमें विचरें ।” अर्थात् यह फलानी जातिका बैल है और ये फलानी जातीकी गौवें हैं, इन दोनोंका संबंध हम करना चाहते हैं । इस संबंधसे विशेष प्रकारकी संतान पैदा होगी । इस प्रकार गौओंमें भी किसी गौका किसी बैलके साथ संबंध होना इष्ट नहीं है । विशेष जातीकी गौके साथ विशेष जातीके बैलका ही संबंध होना अभीष्ट है । गौवोंमें जातीका संकर कदापि होने देना युक्त नहीं है । यदि भिन्न जातिमें संबंध होना है तो उच्च जातीवाले नर के साथ संबंध हो और कदापि नीच जातीवाले नर के साथ संबंध न हो । यदि दूध बढ़ाने की इच्छा हो तो अधिक दूध देनेवाली जातीके

बैलके साथ गौका संबंध हो, यदि बाहक शक्तिवाले बैल उत्पन्न करनेकी इच्छा हो तो उत्तम बाहक शक्तिवाले बैलके साथ संबंध हो । गौओंके अंदरकी उपजातियोंकी भी रक्षा करना योग्य है और संतान विशेष जातीकी हि उत्पन्न करनेका यत्न होना चाहिये । जातिसंकर होनेसे गुणोंकी न्यूनता होती है और जातिकी शुद्धता रहनेसे गुणोंका संवर्धन होजाता है । इस सूक्तमें इस तरह गौओंकी जातियोंकी रक्षा करके अथवा अनुलोम संबंधसे उच्च नरके साथ संबंध रखके गऊओंका संवर्धन करनेका उपदेश है । और यह उपदेश देनेके लिये बैलके रेतमें दूध बढानेका गुण है यह बात कही है । इसका विचार पाठक करें । अस्तु यह बैल—

वक्षणासु विश्वा रूपाणि बिभ्रत् । (मं० १)

“नदीके किनारोंपर यह बैल अपने विविध रूपोंको धारण करता है । ” अर्थात् यह नदीके किनारेपर रहकर घास आदि खाकर यथेष्ट पुष्ट होकर विचरता है और गौवोंमें विविध प्रकारके अपने रूपोंका आधान करता है । यदि यह खा पी कर पुष्ट न बने, तो उत्तम संतान निर्माण करनेमें असमर्थ होगा । इसलिये सांडको बड़ा पुष्ट बनाना चाहिये । इस प्रकारका—

उस्त्रियः तन्तुं आतान् । (मं० १)

“ अपने प्रजातन्तु को फैलाता है । ” अर्थात् गौवोंमें गर्भाधान करके उत्तम संतान उत्पन्न करता है । यही रीति है कि जिससे गौवें और बैल उत्तम निर्माण हो सकते हैं । ऐसे उत्तम जातीके बैल—

दाघ्रे भद्रं शिक्षन् । (मं० १)

“ दाता के लिये कल्याण देते हैं । ” जो मनुष्य ऐसे उत्तम बैल आचार्यों को दान देता है उसका कल्याण होता है । अर्थात् आचार्य, ब्राह्मण आदिके पास बहुत शिष्य होते हैं, अतः उनके आश्रमोंमें अधिक दूध देनेवाली गौवें रहीं, तो वहाँके ब्रह्मचारी दूध पीकर पुष्ट रह सकते हैं । अतः ऐसे उत्तम बैल और उत्तम गौवें ऐसे आचार्योंको देना कल्याणप्रद है । इस सूक्तमें इस प्रकारके दान के लिये प्रेरणा इस तरह की है—

महस्रं स एकमुत्वा ददाति यो ब्राह्मण ऋषभमाजुहोति । (मं० ९)

जिन्वन्ति विश्वे तं देवा यो ब्राह्मण ऋषभमाजुहोति ॥ (मं० १८)

ब्राह्मणेभ्य ऋषभं दत्त्वा वरीयः कृणुते मनः ॥ (मं० १९)

तत्सर्वमनुमन्यन्तां देवा ऋषभदायिने ॥ (मं० २०)

जो (ब्राह्मणे) ब्राह्मण को बैल समर्पण करता है वह एक रूप में हजारों दान करता है ॥ उसको सब देव संतुष्ट करते हैं जो (ब्राह्मणे) ब्राह्मणके घरमें बैलका समर्पण करता है ॥ ब्राह्मणोंको बैल दान देकर मन श्रेष्ठ बनाता है ॥ जो बैलका दान करता है उसके लिये सब देव अनुकूल होते हैं ॥ ”

विद्वान्, ज्ञानी, सदाचारी आचार्यजीको उत्तम बैल दान करनेकी प्रेरणा इस प्रकार इस सूक्तमें की है । इसका तात्पर्य पूर्व स्थानमें जैसा बताया है वैसाहि समझना चाहिये । यही विषय महाभारतमें निम्नलिखित रीतिसे स्पष्ट किया है—

दत्त्वा घेनुं सुव्रतां कांस्यदोहां कल्याणवत्सामपलायिनीं च ।

यावन्ति रोमाणि भवन्ति तस्यास्तावद्वर्षाण्यनुने स्वर्गलोकम् ॥ ३३ ॥

तथाऽनङ्गवाहं ब्राह्मणेभ्यः प्रदाय दान्तं धुर्यं बलवन्तं युवानम् ।

कुलानुजीव्यं वीर्यवन्तं बृहन्तं भुङ्क्ते लोकान्सम्मितान्घेनुदस्य ॥ ३४ ॥

गोषु क्षान्तं गोशरण्यं कृतज्ञं वृत्तिग्लानं तादृशं पात्रमाहुः ।

वृद्धे ग्लाने संप्रमे वा महार्हे कृष्यर्थं वा होम्यहेतोः प्रसूत्याम् ॥ ३५ ॥

गुर्वर्थं वा बालपुष्ट्याभिषङ्गां गां वै दातुं देशकालोऽविशिष्टः ।

म० भा० अनुशा० अ० ७१

“ दान करनेके लिये गौ ऐसी हो कि जो उत्तम स्वभाववाली, बड़े कांस्य के बर्तनमें जिसका दोहन होता हो, जिसके बछड़े उत्तम होते हैं, जो न भागती हो । इसी प्रकार ब्राह्मणोंको दान करनेके लिये योग्य बैल बोझा ढोनेवाला, उत्तम बलवान्, युवा, वीर्यवान्, बड़े शरीरवाला हो । ऐसे बैलका दान करनेवालेको स्वर्गलोक होता है । गौ ऐसे विद्वान् को देनी चाहिये कि जो गौका भक्त हो, गोपालक हो, गौके विषयमें कृतज्ञ हो, वृत्तिहीन हो । गुरुजी को शिष्य उत्तम गौ दान देवे । ” इस रीतिसे महाभारतमें गौ दान और वृषभ दान का विषय कहा है । हरएक ब्राह्मण गौ का दान लेनेका अधिकारी नहीं है । इस विषयमें महाभारत और अथर्ववेदके सूक्तोंमें बहुत नियम हैं, उनका विचार पाठक अवश्य करें—

असद्वृत्ताय पापाय लुब्धायानृतवादिने ।

हव्यकव्यव्यपेताय न देया गौः कथंचन ॥ १५ ॥

भिक्षवे बहुपुत्राय श्रोत्रियायाहिताग्नये ।

दत्त्वा दशगवां दाता लोकानामोत्यनुत्तमान् ॥ १६ ॥

म० भा० अनुशा० अ० ६९

“दुराचारी, पापी, लोभी, असत्यभाषणी, हव्यकव्य न करनेवालेको कभी गौ दान देनी नहीं चाहिये । मिश्रापर जीविका निर्वाह करनेवाला, बहुत पुत्रवाला, वेदज्ञानी, अग्निहोत्री को गोदान करनेसे स्वर्गप्राप्त होता है ।” इस प्रकार महाभारतमें वर्णन है । यह देखनेसे पता लगता है कि विद्वान् सदाचारी आचार्यको ही गौ दान करना योग्य है । केवल ब्राह्मणकुलमें उत्पन्न होनेसे गौ दान लेनेका अधिकारी नहीं हो सकता । तथा अथर्ववेदमें अन्यत्र जो कहा है वह भी यहां देखिये—

यो ददाति शतौदनाम् । अथर्व १०।९।५, ६, १०

ब्राह्मणेभ्यो वशां दत्त्वा सर्वाल्लोकान्समश्नुते ॥ अ० १०।१०।३३

आपो देवीर्मधुमतीर्घृतश्रुतो ब्रह्मणां हस्तेषु प्र पृथक्सादयामि ॥

अ० १०।९।२७

“शतौदना गौका दान करता है । ब्राह्मणोंको वशा गौदान करनेसे सब श्रेष्ठ लोकोंकी प्राप्ति होती है । ब्राह्मणोंके हाथोंपर दान का उदक पृथक् पृथक् छोटता हूं अर्थात् दान करता हूं ।” इन मंत्रोंसे स्पष्ट बोध होता है कि ब्राह्मणोंको गौदान करना चाहिये । यहां विचार करना चाहिये कि कौनसे ब्राह्मणको इस प्रकार गौका दान करना चाहिये । निम्नलिखित मंत्रोंसे इसका उत्तर मिलता है—

शिरो यज्ञस्य यो विद्यात्स वशां प्रतिगृहीयात् ।

य एवं विद्यात्स वशां प्रतिगृहीयात् ॥

य एवं विदुषे वशां ददुस्ते गतास्त्रिदिवं दिवः॥

सा वशा क्षुप्रप्रतिग्रहा ॥

अथर्व १०।१०।२; २७; ३२; २८.

“जो यज्ञके सिरको अर्थात् मुख्य भागको ठीक प्रकार जानता है वह गौका दान लेवे । जो इस ज्ञानसे युक्त है वह गौका दान लेवे । जो इस प्रकारके ज्ञानीको गौका दान करते हैं वे स्वर्गको प्राप्त करते हैं । अन्योको अर्थात् जो इस ज्ञानसे युक्त नहीं हैं उनको गौका दान नहीं लेना चाहिये ।”

इन मंत्रों में विशेष ज्ञानी आत्मनिष्ठ ब्राह्मणोंको गौका दान करना योग्य है ऐसा स्पष्ट कहा है । इस लिये ब्राह्मणको गौदान करनेमें कोई पक्षपात नहीं है । जो ब्राह्मण राष्ट्रके नवयुवकोंको ज्ञान देता है और जो धर्म की मूर्ति है, उसको उत्तम गौओंका दान करना योग्य है । ब्राह्मण-जातिमें उत्पन्न पापी मनुष्योंको कदापि गौओंका दान करना योग्य नहीं है । गौके और बैलके दान के विषयमें यही समान उपदेश है ।

अपां यो अग्ने प्रतिमा बभूव प्रभूः सर्वस्मै पृथिवीव देवी । (मं० २)

“बैलको उपमा केवल मेघकी है, यह सबका प्रभु है और देवी पृथ्वी के समान वह सबका उपकारक है” जिस प्रकार जलदान करनेसे मेघ सबको जीवन देता है और अन्न देनेके कारण पुष्टिका हेतु होता है, उस प्रकार बैलभी अन्न उत्पन्न करता है, कृषीका साधक है और गौके द्वारा अमृत रूपी जीवनरस देता है। इस लिये मेघ और बैल समानतया उपकारक हैं। अतः बैलको वेदमें मेघोंकी उपमा दी है। यह बैल हमें—

साहस्रे पोषे अपि नः कृणोतु । (मं० २)

“हजारों प्रकारकी पुष्टिमें रखे।” अर्थात् हमारा उत्तम रीतिसे सहायक बने। इनके आगे मंत्र ३ और ४ में बैलके गुणोंका उत्तम वर्णन है वह अति स्पष्ट है। पंचम मंत्रमें (सोमस्य मधः) सोमका अन्न बनानेका वर्णन है। सोमरसके साथ दूध मिलानेसे उत्तम पेय होता है, ऐसा अन्यत्र वेदमें कई स्थानोंमें कहा है। उसी सोमके अन्नका यहाँ उल्लेख है। (ओषधीनां रसः) औषधियोंके रसके साथ गायका दूध पीनेकी यह वैदिक रीति यहाँ देखने योग्य है। बैलके कारण गौमें दूध उत्पन्न होता है, इसलिये इस पेयका हेतु बैल है ऐसा यहाँ कहा है, वह बात युक्तियुक्त है। यह बैल—

सोमेन पूर्णं कलशं बिभर्ति । (मं० ३)

“सोमरससे भरे हुए कलशका धारण करता है।” यह अमृत रस का कलश गौका स्तन या ऊध है, जिसमें विपुल दूध रहता है। गायका दूध भी सोमशक्तिसे युक्त होता है, यह सोमशक्ति सोमादि शुद्ध वनस्पतियोंके भक्षणसे गौमें उत्पन्न होती है। इस रीतिसे देखा जाय, तो गौ सोमरसका कलश धारण करती है और यह बैल गौके अन्दर इस सोमरसका धारण कराता है, यह बात स्पष्ट होजाती है। इस प्रकार यह सोमरसका आधार बैल—

इन्द्रस्य रूपं वसानः (मं० ७)

“इन्द्रके रूपको धारण करनेवाला है।” यह बैल इन्द्रकी शक्तिको अपने अन्दर धारण करता है, इसीलिये इसको—

आज्यं बिभर्ति घृतमस्य रेतः साहस्रः पोषस्तप्तु यज्ञमाहुः । (मं० ७)

“घीका धारक, वीर्यका स्थान और हजारों प्रकारकी पुष्टियाँ देनेवाला कहते हैं।” विचार करनेपर पाठकोंको इस बातका अनुभव अवश्य मिलेगा। यदि यह बैल गौमें दूध अधिक उत्पन्न करनेका हेतु है, तो यही घी और वीर्यका वर्धक भी निश्चयसे है,

क्योंकि जो दूधका बढ़ानेवाला है वही वीर्यका बढ़ानेवाला होता है । गौके दूधको वैद्यक ग्रंथोंमें (सकृत् शुक्रकरं स्वादु) शीघ्र वीर्य बढ़ानेवाला कहा है । हजारों अन्य उपायोंसे जो शरीरका पोषण होता है, वह इस अकेले गौके दूधसे हो सकता है । यह सामर्थ्य गायके दूधमें है । गौका और बैलका इतना महत्त्व होनेसे इसका काव्यमय वर्णन इस सूक्तमें आगे किया है । इसके हरएक अवयवमें देवताका अंश है यह बात मं० ८ से मं० १६ तक कही है । प्रत्येक अवयवमें किस देवताका अंश है यह वर्णन देखनेसे गौका और बैलका शरीर देवतामय है, यह बात स्पष्ट हो जाती है । मानो गौका दूध देवताओंका सत्त्व है । यहां पाठक विचार करें कि वेदने गौके दूधका जो इतना माहात्म्य वर्णन किया है वह इस लिये कि वैदिक धर्मी लोग गायका ही दूध पीयें और गायकाही घी आदि सेवन करें । म्हेंस का दूध कभी न पीयें ।

१७ वें मंत्रमें कहा है कि यह बैल सींगोंसे राक्षसोंका नाश करता है और आंखसे अकालका नाश करता है । यद्यपि यह आलंकारिक वर्णन है, तथापि यह सत्य है । बैलके मानव जातीपर इतने अनंत उपकार हैं कि उनका यथार्थ वर्णन करना असंभव है । राक्षस नाशक बैलका वर्णन शतपथ ब्राह्मणमें इस प्रकार आता है—

मनोर्ह वा ऋषभ आस । तस्मिन्नसुरघ्नी सपत्नघ्नी वाक्प्रविष्टास ।

तस्य ह श्वसथाद्रवथादसुररक्षसानि मृद्यमानानि यन्ति । ते हासुराः

समूदिरे पापं बत नोऽयमृषभः सचते कथं न्विमं दभ्रुयामेति॥शु०ब्रा०१

“ मनुका एक बैल था, उसमें असुरों और सपत्नोंकी नाशक वाणी प्रविष्ट हुई थी, अतः उसके श्वाससे असुर और राक्षस मर्दित होते हुए नष्ट हो जाते थे । वे असुर मिलकर विचार करने लगे कि, ‘ यह बैल बड़ा पापी है, इसका कैसा नाश करें । ’ इत्यादि । यह सब वर्णन आलंकारिक है । इससे यहां इतनाही लेना है कि बैलमें असुरनाशक शक्ति है ।

१८ वें मंत्रमें ब्राह्मणको बैल दान करनेका महत्त्व पुनः कहा है । यह एक दान सेंकड़ों दानोंके समान है यह कथन भी विशेष मननीय है । आगेके तीन मंत्रोंमें बैलके दानका महत्त्व वर्णन किया है, इस विषयमें इससे पूर्व बहुत लिखा गया है । इसी प्रकार अन्तिम तीन मंत्रोंमें बैलकी ऐन्द्री शक्तिका वर्णन है, ऐसे बैल गौवोंके साथ रखनेका उपदेश अन्तिम मंत्रमें किया है । ये सब विचार गौ और बैल का महत्त्व वर्णन कर रहे हैं । पाठक इन सब उपदेशोंका महत्त्व जान कर, गौ और बैलका अपने घरमें स्वागत करें और उनसे विशेष लाभ उठावें ।

पञ्चौदन अज ।

[५]

(ऋषिः— भृगुः । देवता—पञ्चौदनोऽजः)

[१] आ नयैतमा रभस्व सुकृतां लोकमपि गच्छतु प्रजानन् ।

तीर्त्वा तमांसि बहुधा महान्त्यजो नाकृमा क्रमतां तृतीयम् ॥ १ ॥

इन्द्राय भागं परि त्वा नयाम्यस्मिन् यज्ञे यजमानाय सूरिम् ।

ये नो द्विषन्त्यनु तान् रभस्वानागसो यजमानस्य वीराः ॥ २ ॥

अर्थ— (एतं आनय) इस को यहां ला और ऐसे (आरभस्व) कर्मों का प्रारंभ कर कि जिससे यह (प्रजानन्) मार्गको जानता हुआ (सुकृतां लोकं अपि गच्छतु) सत्कर्म करनेवालोंके स्थानको प्राप्त होवे । मार्गमें (महान्ति तमांसि बहुधा तीर्त्वा) बड़े अंधकारोंको बहुत प्रकारसे तरके यह (अजः तृतीयं नाकं आक्रमतां) अजन्मा तीसरे स्वर्गधाम को प्राप्त होवे ॥ १ ॥

(अस्मिन् यज्ञे) इस यज्ञमें स्थित (इन्द्राय यजमानाय भागं सूरिं त्वा) इन्द्र और यजमानके लिये भागभूत बने तुझ ज्ञानीको (परि नयामि) सब ओर लेजाता हूं । (ये नः द्विषन्ति) जो हमारा द्वेष करते हैं (तान् अनुरभस्व) उनको नाश करना आरंभ कर । और यजमानस्य वीराः अनागसः) यजमानके पुत्र अथवा वीर पापरहित हों ॥ २ ॥

भावार्थ— इसको यहां ले आओ, शुभ कर्मोंका प्रारंभ करो, अपनी उन्नतिके मार्गको जान लो, और सत्कर्म करनेवाले जहां जाते हैं उस स्थानको प्राप्त करो । मार्गमें बड़े अन्धकारके स्थान लगेंगे, उनको लांघना चाहिये, इस प्रकार यह अजन्मा आत्मा परम उच्च अवस्थाको प्राप्त होता है ॥ १ ॥

इस यज्ञमें तुझे सब ओर लेजाता हूं । तू ज्ञानी बनकर प्रभुके लिये आत्मसमर्पण कर और यज्ञकर्ताके साथ समभागी बन । जो द्वेष करेंगे उनको दूर कर । इस तरह यज्ञकर्ताके कार्यभागी निष्पाप बनें और कार्य करें ॥ २ ॥

प्र पदोर्व नेनिग्धि दुश्चरितं यच्चचारं शुद्धैः शुफैरा क्रमतां प्रजानन् ।
 तीर्त्वा तमांसि बहुधा विपश्यन् अजो नाकमा क्रमतां तृतीयम् ॥ ३ ॥
 अनु च्छद्य श्यामेन त्वचमेतां विशस्त्यथापूर्वं सिना माभि मंस्थाः ।
 माभि द्रुहः परुशः कल्पयैनं तृतीये नाके अधि वि श्रयैनम् ॥ ४ ॥
 ऋचा कुम्भीमध्यग्नौ श्रयाम्या सिञ्चोदकमव वेहेनम् ।

अर्थ— (यत् दुःचरितं चचार) जो दुराचार इसने किया होगा, वह सब (पदः प्र अध नेनिग्धि) इसके पांवसे धो डाल । इसके पश्चात् यह (शुद्धैः शुफैः प्रजानन् आक्रमतां) शुद्ध पांवोंसे मार्गको जानता हुआ चले । (विपश्यन् तमांसि बहुधा तीर्त्वा) देखता हुआ अंधकारोंको बहुत प्रकार से तरके, (अजः) यह अजन्मा (तृतीयं नाकं आक्रमतां) तृतीय स्वर्ग धामको प्राप्त करे ॥ ३ ॥

हे (विशस्तः) विशेष शासक ! तू (एतां त्वचं यथा परु) इस त्वचा को जोड़ोंके अनुसार (श्यामेन असिना अनुछद्य) काले शस्त्रसे काट डाल । (मा आभि मंस्थाः) मत अभिमान कर, (मा आभि द्रुहः) मत द्रोह कर । (परुशः एनं कल्पय) जोड़ोंके अनुसार इसको समर्थ बना । और (तृतीये नाके एनं अधि विश्रय) तीसरे स्वर्गधाममें इसको स्थापित कर ॥ ४ ॥

(ऋचा कुम्भीं अग्नौ अधिश्रयामि) मंत्र से इस पात्रको मैं अग्निपर रखता हूँ । उसमें तू (उदकं आ सिञ्च) जल डाल और (एनं अव वेहि) इसको वहीं स्थापित कर । हे (शमितारः) शान्त करनेवालो ! तुम (अग्निना पर्याधत्त) अग्नि द्वारा चारों ओरसे इसकी चारणा करो । यह

भावार्थ—पूर्व समयमें जो दुराचार हुआ होगा, उसको धो डाल, आगे शुद्ध पांवोंसे अपना मार्ग आक्रमण कर । चारों ओर मार्गको देख, सब अंधकारोंको लांघ कर, जन्ममरणको दूर करके परम उच्च अवस्थाको प्राप्त हो ॥ ३ ॥

योग्य शासक किंवा छेदक जोड़ोंके अनुसार तीक्ष्ण शस्त्रसे शस्त्रप्रयोग करे और रोगादि दोषोंको दूर करे । अभिमान न करे और किसीका द्रोह भी न करे । प्रत्येक अवयवमें सामर्थ्य उत्पन्न करे और परम उच्च स्थानको प्राप्त करे ॥ ४ ॥

पकानेका बर्तन अग्निपर रखा जाय, उसमें पानी डाला जाय, चारों

पर्याधत्ताग्निना शमितारः शृतो गच्छतु सुकृतां यत्र लोकः ॥ ५ ॥

उत्क्रामातः परि चेदत्तस्तप्ताश्चरोरधि नाकं तृतीयम् ।

अग्नेरग्निराधि सं बभूविथ ज्योतिष्मन्तमभि लोकं जयैतम् ॥ ६ ॥ ✓

अजो अग्निरजमु ज्योतिराद्भुज जीवता ब्रह्मणे देयमाहुः ।

अजस्तमांस्यप हन्ति दूरमस्मिल्लोके श्रद्धधानेन दत्तः ॥ ७ ॥

(शृतः गच्छतु) परिपक्व होकर वहाँ जावे कि (यत्र सुकृतां लोकः) जहाँ सत्कर्म करनेवालों का स्थान है ॥ ५ ॥

(अतः तप्तात् चरोः) इस तपे हुए बर्तनसे (अतप्तः) न संतप्त होता हुआ तू (परि उत् क्राम) ऊपर चढ़ और (तृतीयं नाकं अधि) तीसरे स्वर्गधामको प्राप्त हो । (अग्नेः अधि) अग्निके ऊपर (अग्निः सं बभूविथ) अग्नि प्रकट होता है, अतः (एतं ज्योतिष्मन्तं लोकं अभिजय) इस तेजस्वी लोक का जय कर ॥ ६ ॥

(अजः अग्निः) अजन्मा अग्नि है (अजं उ ज्योतिः आहुः) न जन्मनेवाला तेज है ऐसा कहते हैं । (जीवता अजं ब्रह्मणे देयं आहुः) जीते हुए मनुष्य के द्वारा अपना अजन्मा आत्मा परब्रह्मके लिये समर्पण करने योग्य है ऐसा कहते हैं । (अस्मिन् लोके श्रद्धधानेन दत्तः) इस लोकमें श्रद्धा धारण करनेवालेने समर्पित किया हुआ (अजः तमांसि दूरं अप हन्ति) अजन्मा आत्मा अन्धकारोंको दूर भगाता है ॥ ७ ॥

ओरसे अच्छी प्रकार सेक दिया जावे, पकनेके पश्चात् जहाँ सुकृत करनेवाले बैठे हों वहाँ लेजाकर उनको दिया जावे ॥ ५ ॥

तपे बर्तनसे ऐसा बाहेर निकलो कि जैसा न तपा हुआ होता है । और परम उच्च अवस्थाको प्राप्त हो । अग्निपर अग्नि अर्थात् आत्मापर परमात्मा विराजमान है । उस तेजोमय लोकको अपने शुभ कर्मसे प्राप्त करो ॥ ६ ॥

अजन्मा आत्मा भी अग्नि कहलाता है, अजन्मा परमात्मा भी तेजोमय है ऐसा ज्ञानी कहते हैं । जीवित देहधारी लोगोंके अन्दर जो अजन्मा जीवात्मा है वह परमात्मा अथवा परब्रह्मके लिये समर्पित होने योग्य है ऐसा ज्ञानी कहते हैं । इस लोकमें श्रद्धासे यदि इसका समर्पण किया जाय, तो वह अजन्मा आत्मा सब अन्धकारोंको दूर कर सकता है ॥ ७ ॥

॥ पञ्चौदनः पञ्चधा वि क्रमतामाक्रंस्यमानस्त्रीणि ज्योतींषि ।
 ईजानानां सुकृतां प्रेहि मध्यं तृतीये नाके अधि वि श्रयस्व ॥ ८ ॥
 अजा रोह सुकृतां यत्र लोकः शरभो न चत्तोति दुर्गाण्येषः ।
 पञ्चौदनो ब्रह्मणे दीयमानः स दातारं तृप्त्या तर्पयाति ॥ ९ ॥
 अजस्त्रिनाके त्रिदिवे त्रिपृष्ठे नाकस्य पृष्ठे ददिवांसं दधाति ।

अर्थ—(त्रीणि ज्योतींषि आक्रंस्यमानः) तीनों तेजोंपर आक्रमण करने-
 वाला (पञ्चौदनः) पांच भोजनोंवाला अजन्मा (पञ्चधा विक्रमतां) पांच
 प्रकारसे पराक्रम करे । (ईजानानां सुकृतां मध्यं प्रेहि) यज्ञकर्ता सत्कर्म
 करनेवालोंके मध्यमें प्राप्त हो । (तृतीये नाके अधिविश्रयस्व) तृतीय
 स्वर्गधाममें प्राप्त हो ॥ ८ ॥

(अज ! आरोह) हे अजन्मा ! ऊपर चढ़ (यत्र सुकृतां लोकः) जहां
 शुभ कर्म करनेवालोंका स्थान है । (चत्तः शरभः न) छिपे हुए व्याघ्र के
 समान (दुर्गाणि अति एषः) संकटोंके परे जा । (पञ्चौदनः ब्रह्मणे
 दीयमानः) पांचोंका भोजन करनेवाला आत्मा परब्रह्म के लिये समर्पित
 होता हुआ (सः) वह (दातारं तृप्त्या तर्पयाति) दाताको तृप्तिसे संतुष्ट
 करता है ॥ ९ ॥

(अजः) अजन्मा आत्मा (ददिवांसं) आत्मसमर्पण करनेवालेको
 (त्रिनाके त्रिदिवे त्रिपृष्ठे) तीनों सुखोंको देनेवाले, तीनों प्रकाशोंसे युक्त,
 तीन पीठों आधारोंसे युक्त (नाकस्य पृष्ठे) स्वर्गधामके स्थानपर (दधाति)

भावार्थ— तीन तेजोंको प्राप्त करनेवाला यह आत्मा पांच भोग प्राप्त
 करनेवाला है । यह पांच कार्यक्षेत्रोंमें पराक्रम करे । यज्ञ करनेवाले शुभकर्म
 करनेवालोंके मध्यमें प्रमुख स्थान प्राप्त करे और परम उच्च अवस्थामें
 विराजमान होवे ॥ ८ ॥

हे जन्मरहित जीवात्मन् ! उच्च मार्गसे चल, और सत्कर्म करनेवाले
 लोग जहां पहुंचते हैं वहां प्राप्त हो । जिस प्रकार छिपा हुआ व्याघ्र होता
 है, वैसा तू सुरक्षित होकर सब कष्टोंके परे जा । पांच भोजनोंका भोग
 लेनेवाला जीवात्मा परमात्माके लिये समर्पित होकर समर्पण करनेवालेको
 संतुष्ट करता है ॥ ९ ॥

पञ्चौदनो ब्रह्मणे दीयमानो विश्वरूपा धेनुः कामदुघास्येका ॥ १० ॥ (११)

एतद् वो ज्योतिः पितरस्तृतीयं पञ्चौदनं ब्रह्मणेजं ददाति ।

अजस्तमांस्यप हन्ति दूरमस्मिंलोके श्रद्धधानेन दत्तः ॥ ११ ॥

ईजानानां सुकृतां लोकमीप्सन् पञ्चौदनं ब्रह्मणेजं ददाति ।

स व्याप्तिमभि लोकं जयैतं शिवोऽस्मभ्यं प्रतिगृहीतो अस्तु ॥ १२ ॥

धारण करता है । (पञ्चौदनः ब्रह्मणे दीयमानः) पांच भोजनोंवाला जो परब्रह्मको समर्पित होता है ऐसा तू स्वयं (एका विश्वरूपा धेनुः असि) एक विश्वरूप कामधेनुके समान होता है ॥ १० ॥

हे (पितरः) पितरो ! (वः एतत् तृतीयं ज्योतिः) आपके लिये यह तीसरा तेज है, जो (पञ्चौदनं अजं ब्रह्मणे ददाति) पञ्च भोजन करनेवाले अजन्मा आत्मा का परब्रह्मके लिये समर्पण करना है । (श्रद्धधानेन दत्तः अजः) श्रद्धालूद्वारा समर्पित हुआ अजन्मा आत्मा (अस्मिन् लोके तमांसि दूरं अपहन्ति) इस लोकमें सब अन्धकारोंको दूर करता है ॥ ११ ॥

(ईजानानां सुकृतां लोकं ईप्सन्) यज्ञकर्ता शुभकर्म करनेवालोंके लोक की प्राप्ति की इच्छा करनेवाला जो (पञ्चौदनं अजं ब्रह्मणे ददाति) पञ्च भोजन करनेवाले अजन्मा आत्माको परब्रह्मके लिये समर्पित करता है । (सः व्याप्ति एतं लोकं जय) वह तू व्याप्तिवाले इस लोकको जीत लो (यह प्रतिगृहीतः अस्मभ्यं शिवः अस्तु) स्वीकृत हुआ हमारे लिये कल्याणकारी होवे ॥ १२ ॥

भावार्थ— अजन्मा आत्मा आत्मसमर्पण करनेवालेको सब प्रकार के उच्च सुखपूर्ण स्थानके लिये योग्य बनाता है । पांच भोजनोंका भोक्ता जीवात्मा परमात्माके लिये समर्पित होनेपर वह एक कामधेनु जैसा बनता है ॥ १० ॥

जो पांच अन्नोंका भोक्ता जीवात्माका परमात्माको समर्पित करना है वह मानो, सब पितरोंके लिये तृतीय ज्योति देनेके समान है । यह समर्पण यदि श्रद्धासे किया तो वह सब अज्ञानान्धकारको दूर करता है ॥ ११ ॥

जिस लोक को यज्ञ करनेवाले श्रेष्ठ पुरुष प्राप्त करते हैं, वहां पञ्च-भोजनी जीवात्माका परमात्माके लिये समर्पण करनेवाला जाता है ।

अजो ह्यग्नेरजनिष्ट शोकाद् विप्रो विप्रस्य सहसो विपश्चित् ।
 इष्टं पूर्तमभिपूर्तं वर्षदकृतं तद् देवा ऋतुशः कल्पयन्तु ॥ १३ ॥
 अमोतं वास्त्रे दद्याद्विरण्यमपि दक्षिणाम् ।
 तथा लोकान्त्समाप्नोति ये दिव्या ये च पार्थिवाः ॥ १४ ॥
 एतास्त्वाजोषं यन्तु धाराः सोम्या देवीर्धृतपृष्ठा मधुश्रुतः ।
 स्तभान पृथिवीमुत यां नाकस्य पृष्ठेधि सप्तरश्मौ ॥ १५ ॥

अर्थ- (अजः अग्नेः शोकात् हि अजनिष्ट) अजन्मा आत्मा अग्निरूप तेजस्वी परमात्माके तेजसे प्रकट हुआ है । (विप्रस्य महसः) विशेष ज्ञानी परमात्माकी शक्तिसे (विपश्चित् विप्रः) यह ज्ञानी चेतन प्रकट हुआ है । (इष्टं पूर्तं) इष्ट और पूर्त (अभिपूर्तं वर्षदकृतं तत्) संपूर्ण यज्ञके द्वारा समर्पित उसको (देवाः ऋतुशः तत् कल्पयन्तु) देव ऋतुके अनुकूल समर्थ बनाते हैं ॥ १३ ॥

(अमोतं हिरण्यं वासः) साथ बैठकर बुना हुआ सुवर्णमय वस्त्र और (दक्षिणां अपि दद्यात्) दक्षिणा भी दी जावे । (तथा लोकान् समाप्नोति) इससे वे लोक बह प्राप्त करता है, (ये दिव्याः ये च पार्थिवाः) जो ब्रह्मलोकमें और जो इस पृथ्वीपर हैं ॥ १४ ॥

हे (अज) अजन्मा आत्मन् ! (एताः सोम्याः देवीः) ये सोम संबंधी दिव्य (धृतपृष्ठाः मधुश्रुतः) घी और शहदसे युक्त (धाराः त्वा उपयन्तु) रसधाराएं तेरे पास पहुंचें । और तू (सप्तरश्मौ अग्नि) सात किरणोंवाले सूर्यके ऊपर (नाकस्य पृष्ठे यां) स्वर्गके पृष्ठभागपर ब्रह्मलोकको (उत पृथिवीं तस्तभान) और पृथ्वीको स्थिर कर ॥ १५ ॥

अतः तू इस व्यापक लोक को प्राप्त हो । यह लोक प्राप्त होनेपर सबके लिये कल्याणकारी होवे ॥ १२ ॥

परमात्माके तेजसे अजन्मा जीवात्मा प्रकट होता है । महान् ज्ञानी परमात्माकी महिमासे यह चेतन जीवात्मा प्रकट होता है । इसके सब प्रकारके ऋतुओंके अनुकूल सब कर्म सब देव मिलकर पूर्ण करते हैं ॥ १३ ॥

सब बैठकर बुना हुआ वस्त्र सुवर्ण दक्षिणाके साथ दान करना उचित है । इस दानसे भौतिक और अभौतिक लोकोंकी प्राप्ति होती है ॥ १४ ॥

